वती-सिरीज़ नं० ७१

के पुराने हीरे

चन्द्र सौनरिक्सा, बी० ए०



प्रकाशक
यन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

सरस्वती-सिरीज़

कहानी-संग्रह

पूर्व के पुराने हीरे

प्राच्य देशों की चुनी हुई
पुरानी कहानियाँ।

कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा, बी० ए०

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press Ltd., Allahabad

८२६७

विषय-सूची

शियोकू का स्मारक

—जापान

लगभग दो सौ तीस वर्ष पूर्व इनाबा प्रान्त के दाइमों की नौकरी एक युवक करता था, जिसका नाम शीराई गोमपाची था, और जिसने अपनी सोलह वर्ष की अवस्था में ही अपनी सुन्दरता, बलिष्ठता तथा शूरता के लिए ख्याति प्राप्त कर ली थी। हथियार चलाने में वह अत्यन्त कुशल था।

एक दिन गोमपाची का कुत्ता उसके एक साथी बिरादरी के आदमी के कुत्ते से लड़ पड़ा और किसका कुत्ता जीतेगा, इसी पर दोनों ने बाजी बद ली, परन्तु क्योंकि दोनों ही जोश में भरे हुए जवान थे, इसलिए कुत्तों के लड़ते-लड़ते खुद भी लड़ पड़े। गोमपाची ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को मार डाला। और इस हत्या के दंड से प्राण बचाने के लिए वह अपना प्रान्त छोड़कर येदो भाग गया।

इस प्रकार गोमपाची की यात्रा प्रारम्भ हुई।

एक दिन रात को वह परिश्रान्त और क्लान्त विश्राम के लिए आश्रय की खोज में सड़क पर चला जा रहा था कि उसे कुछ दूर चलकर सड़क के किनारे एक सराय-सी मालूम पड़ी और वह सीधा उसमें चला गया। वहाँ खाना खाने के बाद वह सोने चला गया। मेरे ऊपर क्या आपत्ति आनेवाली है इसका उसे बिलकुल कोई भान नहीं था। यह सराय वास्तव

में डाकुओं का अड्डा थी और अनजाने ही गोमपाची उनके जाल में फँस गया था। यह अवश्य था कि गोमपाची के पास अधिक धन नहीं था, किन्तु उसकी कृपाण और कटार दोनों मिलकर चाँदी के तीन सौ भर से ऊपर थीं। डाकुओं की नजर इन्हीं दोनों चीजों पर गड़ गई थी और उन्होंने उन्हें गोमपाची की हत्या करके लूटने का इरादा कर लिया था। किन्तु गोमपाची नींद में अचेतन सोया हुआ था।

आधी रात के समय गोमपाची अपनी गहरी और मीठी नींद से एकाएक चौंक पड़ा—क्योंकि उसके कमरे का दरवाजा खोलकर कोई चुपके से अन्दर आगया था। वह उठकर बैठ गया और उसने देखा, एक पन्द्रह वर्ष की सुन्दरी, जो उसे उठकर खड़े न होने के लिए संकेत कर रही थी, उसके सामने खड़ी थी।

सुन्दरी उसकी शय्या के समीप आकर बोली—"यह सराय नहीं है, डाकुओं का अड्डा है। इन डाकुओं का सरदार आज ही आपके कपड़े, कटार और कृपाण लूटने के लिए आपकी हत्या कर डालने-वाला है। मैं मिकावा के एक धनी व्यापारी की लड़की हूँ। पारसाल ये ही डाकू मेरा घर लूटने गये थे और माल के साथ-साथ मुझे भी लूट लाये थे। इसलिए मैं आपसे हाथ जोड़कर कहती हूँ कि कृपा करके आप मुझे यहाँ से भगा ले चलिए, जिससे हम दोनों के ही प्राण बच जायें।"

यह कहते-कहते वह सुबक-सुबककर रोने लगी।

गोमपाची हक्का-बक्का-सा बैठा था। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। किन्तु वह वीर और साहसी पुरुष था, इसलिए उसने अपने को सँभाला और सुन्दरी की रक्षा के लिए डाकुओं की हत्या करने

का संकल्प किया। यह निश्चय कर उसने उत्तर दिया—"यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो मैं इन डाकुओं को मार डालूँगा और तुम्हें बचा लूँगा। पर जैसे ही मैं उनसे लड़ना शुरू करूँ, तुम यहाँ से बाहर भाग जाना और कहीं छिप रहना और जब तक मैं न आऊँ, छिपी रहना। और अगर तुम यहीं रहोगी, तो पकड़ी जाओगी।"

इस प्रस्ताव से सहमत होकर सुन्दरी कुमारी गोमपाची के पास से चली गई, और वह अपनी साँस रोके डाकुओं की प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देर बाद एक डाकू चुपचाप उसके कमरे में घुसा। गोमपाची ने फ़ौरन ही उसका गला काट लिया और उसकी लाश उसके पैरों के पास गिर पड़ी। यह देखकर शेष नौ डाकू भी गोमपाची पर टूट पड़े, लेकिन उसने सभी को परास्त कर मार डाला।

इस प्रकार अपने शत्रुओं से मुक्त होकर गोमपाची घर से बाहर निकला और उसने उस सुन्दरी कुमारी को पुकारा। वह तुरन्त ही भागकर आई और डाकुओं की हत्या की बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और गोमपाची के साथ मिकावा चल दी। सुन्दरी के घर पहुँचकर गोमपाची ने उसके वृद्ध पिता को सब समाचार सुनाये कि कैसे उनकी पुत्री डाकुओं के पंजे में फँस गई थी और फिर कैसे मैं भी उनके जाल में जा फँसा और फिर उन सबकी हत्या करके आपकी पुत्री को बचा लाया और स्वयं मेरे प्राण आपकी पुत्री ने ही बचाये।

जब बूढ़े माता-पिता को अपनी खोई हुई बेटी फिर मिल गई, तब वे हर्ष के कारण फूले नहीं समाये और गोमपाची के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उन्होंने उससे वहीं अपने साथ रहने का

आग्रह किया और उसके सम्मान-सत्कार में बड़ी-बड़ी दावतें कीं। किन्तु वह सुन्दरी कुमारी गोमपाची के सौन्दर्य और असाधारण शौर्य को देखकर मुग्ध हो चुकी थी, और अपने प्राणों के रक्षक को प्राणों से भी अधिक प्यार करने लगी थी। वह दिन-रात उसी के ध्यान में भूली रहती।

बूढ़े माता-पिता के कोई पुत्र नहीं था, इसलिए उन्होंने गोमपाची को ही गोद लेने का विचार किया, और इसके लिए उसे फुसलाने लगे, लेकिन वह येदो जाकर किसी सेठ के घर नौकरी करना चाहता था, इसलिए उसने बूढ़े पिता की प्रार्थना और सुन्दरी कुमारी को प्यार की बातों को ठुकरा दिया और यात्रा की तैयारी कर दी। जब वृद्ध ने देखा कि युवक किसी प्रकार नहीं मानता, तब उन्होंने उसे दो सौ चाँदी के सिक्के देकर दुखी और कातर हृदय से बिदा किया।

कुमारी का हृदय शोक के मारे फटा जाता था। अपने प्रियतम की इस निर्ममता से वह तो पागल हुई जा रही थी, पर उधर गोमपाची प्रेम की अपेक्षा अपनी महत्त्वाकांक्षा को अधिक महत्त्व दे रहा था। वह उसके पास जाकर उसे सान्त्वना देने का प्रयत्न करने लगा—"रोओ मत! मैं बहुत जल्दी लौटकर तुम्हारे पास आ जाऊँगा। इस बीच में तुम अपने माता-पिता की सेवा करना और मुझे भूलना मत!"

जब गोमपाची ने लौटकर आने का वचन दे दिया, तब कुमारी ने अपने आँसू पोंछ डाले और फिर मुस्कराने लगी।

गोमपाची अपनी यात्रा पर चल पड़ा और यथासमय येदो के समीप पहुँच गया।

किन्तु उसकी विपत्तियों का अभी अन्त नहीं हुआ था। एक रात को काफ़ी देर से जब वह येदो के समीप सुजुगामोरी पहुँचा, तब छः

डाकुओं ने उसपर आक्रमण किया। किन्तु गोमपाची ने तत्काल ही अपनी तलवार खींच ली और वहीं उनमें से दो डाकुओं को मार डाला। चार से लड़ना अभी बाकी था, परन्तु वह लम्बी यात्रा के कारण इतना अधिक थका हुआ था कि वह उन चार डाकुओं का सामना करने में साहस खोने लगा।

यह संघर्ष अभी चल ही रहा था, कि उधर सड़क पर से एक चौकीदार पालकी में जा रहा था। यह लड़ाई देखकर वह रुक गया और अपनी तलवार खींचकर पालकी से उतर पड़ा। इस नये सहायक को अचानक ही पाकर गोमपाची का साहस भी बढ़ गया और उन दोनों ने मिलकर डाकुओं को भगा दिया।

अब गोमपाची का यह दयालु सहायक बन्दज़ुईन का कोबी निकला। यह आन्तोकोदाते अथवा येदो के मित्रमंडल का सभापति था और उसकी वीरता और भलाई की कहानियाँ आज भी येदो में कही जाती थीं और उसका यशोगान होता था।

डाकुओं के भाग जाने के बाद गोमपाची ने कोबी से कहा—"मैं यह तो नहीं जानता कि आप कौन हैं, लेकिन जो सहायता करके इस समय आपने मेरी जान बचाई है उसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ और चिरकृतज्ञ रहूँगा।"

कोबी ने उत्तर दिया—"मैं एक ग़रीब चौकीदार हूँ, और बहुत तुच्छ व्यक्ति। डाकू जो भाग गये, इसका कारण तो आपका सौभाग्य था, न कि मेरी सहायता। किन्तु जिस वीरता से आपने उनका सामना किया, उससे मेरे हृदय में आपके लिए बड़ी प्रशंसा और श्रद्धा उमड़

पड़ी है। आपने जो शौर्य प्रदर्शित किया, वह आप जैसी अल्पावस्था के युवक के लिए अवश्य ही असाधारण है।"

"ठीक है", युवक ने अपनी प्रशंसा से प्रसन्न होकर कहा—"किन्तु मैं अभी बच्चा हूँ और अनुभव-शून्य और अपनी दुर्बलता पर मुझे बहुत लज्जा होती है।"

"अच्छा, तो अब कृपया बताइए कि आप कहाँ जा रहे हैं?"

"यह तो मैं स्वयं नहीं जानता, क्योंकि मैं आवारा हूँ—न मेरे घर है, न द्वार!"

यह सुनकर कोबो को गोमपाची पर तरस आगया और उसने सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कहा—"यह तो सचमुच बुरी बात है। पर अगर आप बुरा न मानें तो, जब तक आपको कोई नौकरी न मिले, आप मेरे ही घर पर रहिए।"

गोमपाची ने अपने इस नवीन किन्तु विश्वसनीय मित्र का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। और कोबो उसे अपने घर ले गया, जहाँ उसने कई महीनों तक उसे बड़े आदर और सत्कार से रक्खा।

गोमपाची को कोई काम तो था नहीं और वह यों ही पड़ा-पड़ा आलस्य में समय व्यतीत करता था, इसलिए कुकर्मों की ओर उसकी प्रवृत्ति होने लगी और बुरी-बुरी आदतें उसने सीख लीं। अब दिन-रात वह अपनी वासना तृप्त करने के साधनों की खोज में रहता। उसने योशीवारा जाना आरम्भ कर दिया, जहाँ वेश्यायें रहती थीं। वहाँ जब गोमपाची पहुँचा, तब उसके बलिष्ठ सुन्दर शरीर को देखकर वेश्यायें उसकी ओर आकर्षित हो गईं और उनमें से सुन्दर से सुन्दर के पास वह आने-जाने लगा।

इन्हीं दिनों योशीवारा में कुमारासाकी के असीम सौन्दर्य का गान होने लगा। कुमारासाकी वहाँ नई-नई आई थी और अपने गुणों तथा सौन्दर्य से उसने सभी अन्य वेश्याओं को फीका कर दिया था। योशीवारा में केवल वही चमचमाती थी। शेष का सौन्दर्य उसके तलवों के मैल के समान हो गया।

सबकी तरह गोमपाची ने भी कुमारासाकी के अनुपम सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी और स्वयं भी उसके पास जाने का संकल्प किया यह देखने के लिए कि वह जितनी सुन्दरी कही जाती है, उतनी ही सुन्दरी है भी कि नहीं। जिस भवन में वह रहती थी, वह "तीन समुद्र-तट" के नाम से प्रसिद्ध था। अपने निश्चय के अनुसार एक दिन वह वहाँ पहुँचा और दरबान से कुमारासाकी से मिलने की इच्छा प्रकट की।

दरबान गोमपाची को कुमारासाकी के कमरे में ले गया। वहाँ कुमारासाकी बैठी हुई थी। ज्यों ही वह उसकी ओर बढ़ा, त्यों ही आश्चर्य से स्तंभित होकर ठिठक गया और कुमारासाकी भी उस गोमपाची को देखकर चकित हो गई। गोमपाची ने देखा—यह तो वही सुन्दरी कुमारी है, जिसे उसने डाकुओं के पंजे से बचाया था और जो उसे प्यार करती थी। और कुमारासाकी को भी अपने बिछुड़े हुए प्रेमी को पहचानते देर नहीं लगी।

गोमपाची ने एक बड़े सम्पन्न और धनी सेठ की पुत्री के रूप में मिकावा छोड़कर आया था, और तब वह उसकी सच्ची प्रेयसी भी थी, और आज उसी से वह इस रूप में येबो में मिल रहा था। कितना भयंकर परिवर्तन! कितना दुखद अन्तर! उस सब सम्पत्ति का क्या हुआ? क्या वह वर्ष भर में ही धूल में मिल गई!

"यह सब क्या है ?" गोमपाची ने दुखी हृदय से चीत्कार कर कहा—"तुम यह पेशा करने के लिए योशीवारा में कैसे आगई ? इन सब में मुझे कोई भेद मालूम होता है। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है; इसलिए जल्दी सब हाल बताओ ?"

कुमारासाकी अपने जिस प्राणप्रिय प्रेमी के दर्शनों के लिए तड़प गई थी। उसी से इस प्रकार अनायास ही मिलकर उसके हर्ष का वारा-पार न रहा, पर अपनी इस पतितावस्था पर उसका शोक और भी अधिक उमड़ आया। अपने प्रेमी के सन्मुख अपने को इस रूप में देखकर वह लज्जा से पानी-पानी हुई जा रही थी। वह दुखावेश को न रोक सकी; रोकर कहने लगी—

"मेरी कहानी बड़ी दुखद है गोमपाची ! तुम्हारे चले आने के बाद पिता जी पर आपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा—विपत्तियों की बिजलियाँ टूट पड़ीं और हम लोग पाई-पाई के लिए मोहताज हो गये। उनकी यह दुर्दशा—भूख और प्यास मुझसे सहन नहीं हो सकी और पेट पालने के लिए मैंने इस मकान—"तीन समुद्र-तट" के मालिक के हाथ अपना शरीर बेच दिया, किन्तु फिर भी मुसीबतों के बादल घिरे ही रहे और गरीबी बढ़ती ही गई। आखिर दुख सहते-सहते माता-पिता दोनों ही चल बसे और इस बड़ी दुनिया में मुझे अकेला छोड़ गये—कितनी अभागिन और दुखी हूँ मैं ! पर अब तुम मुझे फिर मिल गये हो। तुमने एक बार मेरी रक्षा की थी, तुम वीर पुरुष हो—मुझे आशा है कि तुम मुझ दुर्बल की फिर भी रक्षा करोगे—इस अबला पर दया करोगे—तुम्हारे सिवा मेरे जीवन में अब कोई नहीं है—अब मुझे मत छोड़ो !"

कुमारासाकी अपनी दुखद कहानी कहती जाती थी और उसकी आँखो से आँसुओं की वृष्टि हो रही थी।

गोमपाची का हृदय अपनी प्रेयसी की इस करुण कहानी को सुनकर शोकाकुल हो उठा। उसने कहा—"सच में तुम पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा है। मुझे तुम्हारे घर की अमीरी आज भी अच्छी तरह याद है—खैर, अब जो हो गया, सो हो गया। इसपर सोच करने से, दुखी होने से कुछ लौटकर नहीं मिल सकता। इसलिए धीरज रक्खो, पर मैं भी इतना ग़रीब हूँ कि इस अवस्था से तुम्हें निकाल नहीं सकूँगा, फिर भी मैं सोचकर तुम्हें सुखी करने के लिए जो भी हो सकेगा करूँगा। तुम मुझे पहले की तरह ही प्यार कर सकती हो। मुझमें विश्वास कर सकती हो।"

अपने प्रेमी के ऐसे सान्त्वना और आश्वासन भरे शब्द सुनकर कुमारासाकी के मन का सन्ताप दूर हो गया और उसे बहुत शान्ति मिली। उसके आँसू बन्द हो गये और हर्षित होकर उसने अपने तन-मन का सारा प्यार गोमपाची पर निछावर कर दिया और उससे मिलन की मधुर वेला में अपने सभी दुख भूल गई।

जब बेसुध कुमारासाकी प्रिय के आलिंगन से मुक्त हो गई, तब गोमपाची ने उसे एक बार फिर आलिंगन में कसकर चूम लिया और बिदा लेकर कोबी के घर लौट आया।

किन्तु गोमपाची कुमारासाकी को भूला नहीं। वह दिन-रात उसी के ध्यान में डूबा रहने लगा। और अन्य वेश्याओं के पास जाना उसने बन्द कर दिया और प्रतिदिन उसी के पास जाने लगा। जिस दिन वह यशीवारा में "तीन समुद्र-तट" नहीं पहुँचता, उसी दिन कुमारासाकी

आशंकाओं से चिन्तित हो उठती और तुरन्त ही चिट्ठी लिखकर उससे अनुपस्थिति का कारण पूछती।

जीवन के इस मार्ग पर निरन्तर चलते रहने से गोमपाची के पास जो भी पूँजी थी, वह समाप्त हो गई। बेकार वह था ही, इसलिए आमदनी का कोई साधन नहीं था और बिना पैसे के "तीन समुद्र-तट" आने में उसे शर्म लगती थी।

पर कुमारासाकी के पास उसे जाना तो था ही, इसलिए, पैसा पैदा करने का कोई साधन भी गोमपाची को ढूँढ़ना था। जब वह सब ओर से बिलकुल निराश हो गया, तब उसके अन्तर का पशु और हिंसक जाग उठा। उसने एक सेठ की हत्या करके उसे लूट लिया और फिर यशो-वारा जाने लगा।

एक बुराई करने के बाद दूसरी बुराई करना और भी आसान हो जाता है और जब चीते के मुह एक बार खून का स्वाद चढ़ जाता है, तब वह खूँख्वार हो उठता है। कुमारासाकी के प्रेमोन्माद में चिपटा और पागल गोमपाची एक हत्या करके सन्तुष्ट नहीं हुआ, वरन् उसने लूट-मार को ही अपना पेशा भी बना लिया और दिन के उजाले में यद्यपि उसका प्रकट व्यक्तित्व बड़ा सुन्दर और शालीन था, किन्तु उसके अन्तर में छिपा हुआ राक्षस बड़ा काला और क्रूर था, जो रात के घने अन्धकार में अपना वास्तविक भयानक रूप प्रकट कर धनिकों को लूटता और उनकी हत्या करता था। अन्त में अपने मित्र की इन हरकतों से खीझकर कोबी ने उसे अपने घर से निकाल दिया।

पाप का घड़ा एक दिन अवश्य ही फूट पड़ता है। सरकार को पता चल गया कि गोमपाची ही यह डाके डालता है और हत्या करता है।

फिर क्या था, उसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट निकल गया और गुप्तचर लग गये। एक रात को वह एक हत्या करते हुए पाया गया और तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया। उसके ऊपर अनेक हत्याओं और डाकों का अभियोग प्रमाणित हो गया और फलस्वरूप मृत्यु-दंड मिला।

सुज़ुगामोरी के मृत्यु-दंड-गृह में गोमपाची का सिर काट लिया गया।

गोमपाची की ऐसी दुखद मृत्यु से कोबी के हृदय में उसके लिए खोया हुआ स्नेह फिर उमड़ आया और उसने सरकार से उसका शव लेकर ओरोन्जी-मन्दिर के मेगूरी नामक श्मशान में समाधिस्थ कर दिया।

जब कुमारासाकी ने योशीवारा में लोगों के मुख से अपने प्रियतम के दुखद अन्त की सूचना पाई, तब उसके दुख और शोक की कोई सीमा न रही। वह चुपचाप "तीन समुद्र-तट" से छिपकर मेगूरी पहुँची और अपने प्रेमी की समाधि पर सिर पटक-पटक कर आर्त्तनाद करने लगी। गोमपाची इतना बुरा था, न जाने कितनी दुर्बलताओं का दास था वह, फिर भी कुमारासाकी उसे अपने समस्त तन-मन और प्राणों से प्यार करती थी। उसका वियोग सहने की क्षमता उसमें नहीं रही थी। अपनी कमर से कटारी खींचकर उसने अपनी छाती में भोंक ली और वहीं अपने प्रेमी की समाधि पर प्राण त्याग दिये!

जब मन्दिर के पुजारियों ने कुमारासाकी का शव गोमपाची की समाधि पर देखा तब अपने प्रेम के लिए वे इस सुन्दरी के अद्भुत बलिदान से द्रवित हो उठे और श्रद्धा-भक्ति से उनके शीश कुमारासाकी के चरणों में नत हो गये।

उन्होंने वहीं गोमपाची की समाधि के पार्श्व में ही कुमारासाकी को भी समाधिस्थ कर दिया और दोनों समाधियों के ऊपर एक स्मारक बनवा दिया, जिस पर अंकित है—"शियोकू का स्मारक।"

आज भी येदो में यह प्रेम-स्मारक मौजूद है और लोग इसके दर्शनार्थ जाते हैं और गोमपाची के पौरुष-सौन्दर्य तथा कुमारासाकी के सच्चे प्रेम की प्रशंसा करते लौटते हैं।

हिन्द

—अरब

कहा जाता है कि हिन्द अपने ज़माने की सबसे ख़ूबसूरत औरत थी।

अलहजाज ने जब उसके हुस्न की बेहद चर्चा सुनी, तब उसने उससे शादी करने का इरादा किया और दहेज की रक़म के अलावा दो लाख दिरम उसके महर के लिए तय कर दिये।

हिन्द के बाप इबनुआमान ने अलहजाज़ की शर्तें मंज़ूर कर लीं और उसके साथ उसकी शादी कर दी।

शादी करने के बाद हिन्द अलहजाज के साथ ही अपने बाप के ज़िले अलमार्राह बहुत दिनों तक रही और फिर उसके साथ ईराक़ चली गई और वहीं रहने लगी।

हिन्द काफ़ी पढ़ी-लिखी, होशियार और तमीज़दार भी थी। एक दिन जब अलहजाज उससे मिलने आ रहा था, तब उसने उसे जो कुछ गाते सुना, उसका मतलब यह था—

"आला ख़ानदान और पाक ख़ून की हिन्द, जो अरबी घोड़ों की तरह ही कमाल की ख़ूबसूरत और तेज़ है, एक ख़च्चर के साथ कैसे 'मिल' सकती थी?

"अगर उसका बच्चा अच्छी नस्ल का पैदा होता है, तो उसकी वजह हिन्द की वह ख़ूबसूरती, तालीम और तरबियत होगी जो ख़ुदा-

वंद करीम ने उसपर मेहरबानी करके बख्श दी है। और अगर बच्चा खच्चर की क़िस्म का हुआ, तो उसकी वजह होगी उसके बाप की खच्चर की नस्ल !"

इतना सुन लेने पर अलहजाज ने फिर हिन्द से कुछ कहने-सुनने की ज़रूरत नहीं समझी, और उसे फ़ौरन ही तलाक़ देने का पक्का इरादा अपने दिल में कर लिया। इसी लिए उसने अब्दुल्ला इब्न ताहीर को उसके पास उसके महर के दो लाख दिरम लेकर भेजा, और कह दिया—"इब्न ताहीर, कुछ कहने-सुनने की ज़रूरत नहीं है। बस उसके महर की यह रक़म उसके हवाले करके कह देना कि अलहजाज ने तुम्हें तलाक़ दे दिया।"

अब्दुल्ला इब्न ताहीर हिन्द के पास आकर कहने लगा—"आबू मुहम्मद अलहजाज साहब ने आपके लिए यह इत्तला भेजी है—'तुम न मेरी कभी थीं और न अब रहीं'—और आपके महर की यह दो लाख दिरम की रक़म भेज दी है, इसे क़बूल फ़रमाइये।"

इसके जवाब में हिन्द ने कहा—"मैं खुदा की क़सम खाकर कहती हूँ इब्न ताहीर ! कि मैं उनकी नेक और पाक बीबी थी, पर मुझे उनसे कोई दिली खुशी हासिल नहीं थी और अब यह तलाक पाने का क़तई कोई अफ़सोस मुझे नहीं है। और यह महर की रक़म मैं आपको ही बतौर इनाम के देती हूँ, क्योंकि आज आपने ही मुझे उस दोज़ख के कुत्ते से मेरे छुटकारे की खुश-खबरी सुनाई है !"

बादशाह सलामत के वफ़ादार सिपहसालार अब्दुल मलिक इब्न मार्वां ने हिन्द के हूर के-से हुस्न की तारीफ़ तो पहले ही सुनी थी, पर तलाक़ की खबर सुनकर बेहद खुश हुए और खुद से ही शादी करने

के लिए उसके पास एक जुबानी परवाना भेजा, लेकिन उसने जवाब में एक खत लिखा, जिसमें मामूली और जरूरी दुआ-सलाम के बाद उसने लिखा—"बादशाह सलामत के ऐ वफ़ादार सिपहसालार साहब, आपको मालूम होना चाहिए कि अभी हाल ही में मैं एक दोजख के कुत्ते के जंजाल से छूटी हूँ!"

अब्दुल मलिक ने जब हिन्द का यह खत पढ़ा, तब वह हँस पड़ा और उसे फिर दूसरा खत लिखा इस तरह से कि वह शादी के लिए किसी तरह भी इनकार न कर सके।

दुआ-सलाम के बाद हिन्द ने अपने दूसरे जवाब में लिखा—"बादशाह सलामत के वफ़ादार सिपहसालार साहब, आपको यह मालूम होना चाहिए कि मैं आपसे सिर्फ़ एक शर्त पर शादी कर सकती हूँ। और अगर आप यह पूछें कि वह शर्त क्या है, तो मैं यह जवाब दूँगी कि अलहजाज शादी के बाद जहाँ भी आप हों, वहाँ तक मेरी पालकी के साथ-साथ अपनी उसी पोशाक में, जिसे वह हमेशा पहनता है, पैदल जाय!"

हिन्द का यह खत पढ़कर भी अब्दुल मलिक को बहुत हँसी आई, लेकिन उसने वह खत अलहजाज के पास मय अपने हुक्मनामे के भेज दिया।

जब अलहजाज ने बादशाह सलामत के वफ़ादार सिपहसालार का हुक्म पाया, तो उसको बजा लाने से इनकार करने की हिम्मत उसे नहीं हुई और उसने चुपचाप उसे मान लिया।

इसके बाद अब्दुल मलिक ने हिन्द के पास भी यह खबर भेज दी कि अलहजाज उसके मन के मुताबिक करने को तैयार है और इसलिए अब तुम भी जल्द ही शादी के लिए तैयार हो जाओ।

यह खुश-खबरी पाकर हिन्द फ़ौरन ही शादी के लिए तैयार हो गई।

उधर अलहजाज अपने घुड़सवार लेकर हिन्द के घर अलमाराँह पहुँचा।

हिन्द पालकी में बैठ गई और उसकी बाँदियाँ और उसके ग़ुलाम पालकी के साथ-साथ खच्चरों पर सवार होकर चले। हिन्द की पालकी ऊँट की पीठ पर लगी हुई थी और ऊँट की नकेल लेकर आगे-आगे पैदल अलहजाज चला जा रहा था।

तब अपनी दाई अलहीफ़ा के साथ वह अलहजाज की हँसी उड़ाने लगी और धीरे-धीरे यहाँ तक बढ़ी कि दाई से कहने लगी—"दाई साहिबा, जरा मेरी पालकी का पर्दा खोल दीजिए जिससे मैं कुछ खुली हवा में साँस ले सकूँ।"

अलहीफ़ा ने फ़ौरन ही हुक्म बजाया और तब हिन्द और अलहजाज आमने-सामने पड़ गये और वह उसके मुँह पर ही उसकी खिल्ली उड़ाने लगी—लेकिन अलहजाज ने एक शेर कहा, जिसका मतलब यह था—

"ऐ हिन्द! अब इस तरह मुँह चिढ़ाने से क्या होता है? क्योंकि मैं तुझे बहुत दिन हुए पुराने कपड़े की तरह उतारकर फेंक चुका हूँ।"

लेकिन इसका जवाब हिन्द ने भी एक शेर कहकर दिया। उस शेर का मतलब यह था—

"जिस जायदाद को खो देने की वजह से मैं अपना माल और इज्जत भी खो बैठी, उसका मुझे कोई अफ़सोस नहीं है, क्योंकि माल और इज्जत फिर भी मिल सकते हैं, लेकिन एक बार इन्सान की निकली हुई

जान फिर वापस नहीं आती और इसी लिए यह छोटी-सी हमारी जिन्दगी सभी और चीज़ों से ज्यादा कीमती है।"

और यह कहने के बाद भी उसने अलहजाज को चिढ़ाना और उसकी हँसी उड़ाना बन्द नहीं किया।

जब वे खलीफ़ा के मुल्क में शहर के नजदीक पहुँचे, तब हिन्द ने कुछ दीनार अपने हाथ से नीचे गिरा दिये और पुकारकर अलहजाज से कहने लगी—"ऐ ऊँटवाले! मेरे कुछ दिरम जमीन पर गिर पड़े हैं, सो उठा दे।"

अलहजाज ने ऊँट रोका और दिरम ढूँढ़ने लगा, पर उसने देखा कि दीनार पड़े हैं, तब वह बोला—"यह तो सोने के दीनार हैं।"

"नहीं!" हिन्द ने कड़े होकर कहा—"दिरम गिरे हैं मेरे तो!"

अलहजाज ने कहा—"दीनार ही है।"

यह सुनकर हिन्द चीखकर बोली—"अल्लाह तेरा शुक्र है! मेरे हाथ से गिरे हुए दिरमों को दीनारों में बदल दिया तूने! हजारहा शुक्र है तेरा या खुदा!"

यह देखकर अलहजाज कुछ परेशानी में पड़ गया। यह क्या माजरा है, यह उसकी समझ में नहीं आया और वह ख़ामोश रहा, लेकिन हिन्द के साथ-साथ अब्दुल मलिक इब्नमार्वां के पास तक गया।

अब्दुल मलिक इब्नमार्वां ने हिन्द के साथ बड़ी शान-शौक़त के साथ निकाह कर लिया और इस तरह हिन्द की मर्जी पूरी हुई—उसने अपनी बेइज्ज़ती का बदला ले लिया।

प्रमति

—भारतवर्ष

सूर्यास्त हो गया था और रात होनेवाली थी। चलते-चलते मैं एक निर्जन और सघन वन में पहुँच गया था। आगे अँधेरे और अनजानेप्रदेश में जाने का विचार त्याग कर मैंने वहीं सोने की तैयारी कर दी। वन में पास ही एक छोटी-सी स्वच्छ झील थी, उसमें स्नान करके मैंने सोने के लिए एक पेड़ के नीचे पत्तियाँ बिछा लीं और लेटकर रात्रि के सभी अनिष्टों से अपनी रक्षा करने के लिए मैंने देवी-देवताओं की प्रार्थना करनी प्रारम्भ की और प्रार्थना करते-करते ही न जाने कब प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गया।

अनायास ही मैं एक विचित्र-से सुख से विभोर हो उठा और मेरी नींद खुल गई। मैं सोचने लगा कि अभी जो कुछ मैं देख रहा था वह सत्य था या सपना, और यह सोचते-सोचते ही मैंने चारों ओर दृष्टि फेरी, तो देखता क्या हूँ कि न वह वन है, न वह वृक्ष और न वह पल्लव-शय्या ही, अपितु मैं एक दूध-सी श्वेत जालियों से ढँकी हुई एक अति कोमल शय्या पर एक बड़े विशाल कक्ष में लेटा हुआ हूँ और मेरे चारों ओर वहाँ अनेक सुन्दरियाँ निद्रा में बेसुध पड़ी थीं। उनमें से मेरा ध्यान एक युवती की ओर आकर्षित हो गया—वह सौन्दर्य की जैसी सजीव प्रतिमा थी; अत्यन्त सुकुमार रेशम में से अल्पावरत उसकी सुन्दरता का अंग-प्रत्यंग उभरा हुआ था; उसके भव्य वक्षस्थल पर उसके कठिन

उरोज धीरे-धीरे उठते और गिरते थे और मीठी नींद की धीमी-धीमी साँस से उसके अधखिली कली-से ओंठ धीरे-धीरे काँप-से रहे थे।

मेरे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं थी। मैंने मन ही मन कहा—"अन्धकार के आवरण में लिपटा हुआ वह विशाल सघन वन कहाँ खो गया? मेरी पल्लव-शय्या इस पुष्प-शय्या में कैसे परिवर्तित हो गई? शिव-मन्दिर के-से विशाल गुम्बज के नीचे मैं कैसे आगया? ये सुन्दरियाँ कौन हैं, जो रास-विलास से श्रान्त अप्सराओं की भाँति सोई हुई हैं? और यह सबसे अधिक सुन्दरी युवती कौन हो सकती है? यह देवी तो है नहीं, क्योंकि वे इस भाँति निद्रा में लीन नहीं होतीं; उनके तो पलक सदैव खुले रहते हैं और उन्हें श्वास लेने की आवश्यकता नहीं होती। तब तो यह अवश्यमेव मानवी ही है—किन्तु ओह अप्सराओं से भी अधिक सुन्दर! कैसी मीठी नींद में सोई हुई है, जैसे प्रेम की विकलता से नितान्त अनजान हो—ओह—पर मेरा हृदय इसकी ओर क्यों आकर्षित हुआ जा रहा है!"

यह सोचते-विचारते मैं उठकर खड़ा हो गया और उस शय्या के समीप पहुँचा जहाँ वह सोई हुई थी और खड़ा होकर देखने लगा। मैं ऐसा खोया-खोया-सा था जैसे किसी ने मुझ पर मंत्र पढ़ दिया हो। उसकी सुन्दरता का आकर्षण प्रतिपल बढ़ता ही जाता था और वह मेरे हृदय को असंख्य तीरों की भाँति बेध रहा था और मैं अपने को वश में न रख सका। उसे स्पर्श करने के लिए तरसने लगा, पर इस भय से कि कहीं उसकी मीठी नींद उचट न जाय, मैं यों ही खड़ा-खड़ा उसे निहारता रहा।

जब मैं उसे इस प्रकार निर्निमेष दृष्टि से मंत्रमुग्ध-सा खड़ा निहार

रहा था कि धीरे-धीरे उसकी पलकें खुलने लगीं और उठकर बैठ गई। तत्पश्चात् अलसाई आँखों से मेरी ओर ध्यानपूर्वक देखा। सर्वप्रथम उसके ओंठ खुले, जैसे वह चिल्लाना चाहती हो, किन्तु न जाने किस अज्ञात शक्ति के वश होकर वह चुप ही रही; परन्तु उसके शरीर का रोम-रोम प्रकम्पित था और उसकी उस छबीली मुद्रा पर सन्देह, भय, आश्चर्य, लज्जा और प्रेम की सम्मिश्रित भावनायें नृत्य कर रही थीं। नींद अभी तक उसकी आँखों में भरी हुई थी और वह फिर लेट रही।

बस इसी समय मेरी भी आँखों में नींद झुकी पड़ने लगी और मैं भी गहरी नींद में फिर सो गया।

जब प्रातःकाल मेरी नींद खुली, तब मैंने अपने को उसी पल्लव-शय्या पर लेटा हुआ पाया, और वही वृक्ष था, वही वन, वही निर्जन!

जब मैं बिलकुल जग गया, तब अपने विचार संकलित करने में मुझे कुछ कठिनाई मालूम पड़ी। मैंने मन में कहा—"यह सब क्या केवल मात्र स्वप्न था, अथवा इसमें कुछ सत्य भी था? या किसी ने मेरे ऊपर रात को जादू कर दिया था? जो भी हो, जब तक मैं इस बात का सत्य कारण खोज नहीं लूँगा, इस स्थान से हटूँगा नहीं और अपनी रक्षार्थ उसी देवता की प्रार्थना करूँगा जिसने मुझे ऐसा मनोहर स्वप्न दिया है!"

यह संकल्प करके मैं वहीं अपनी पल्लव-शय्या पर ही बैठा हुआ था कि दूर से मुझे धूप में फूल की तरह मुर्झाई हुई एक युवती आती दिखाई पड़ी। रोते-रोते उसकी आँखें लाल होकर सूज गई थीं। आहें भरते-भरते उसके ओंठ सूख गये थे और उनपर पपड़ी जम गई थी। काले कपड़े पहने थी; शरीर पर आभूषण एक भी नहीं था।

बाल बिखरे हुए और रूखे थे, जैसे पति की अनुपस्थिति में विरहाकुल पतिव्रता पत्नी शृंगारविहीन रहती है। किन्तु यह सब होते हुए भी उसका व्यक्तित्व बड़ा भव्य और दिव्य-सा था, इसी लिए मेरे मन में उसके प्रति श्रद्धा जागृत हो गई और मैंने अनुमान किया कि वह तत्स्थानीय देवी थी जिसकी उपासना का संकल्प मैंने किया था। इसलिए मैंने उसे साष्टांग दण्डवत् की, और उसने तुरन्त ही मुझे अपने हाथों पर उठा लिया और छाती से चिपटाकर बार-बार चूमने लगी। उसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित थे और रह-रहकर वह सुबक रही थी। टूटे और क्लान्त से स्वर में कहने लगी—"ओ मेरे लाल, तूने रानी वसुमति से यह कथा अवश्य ही सुनी होगी कि कैसे एक रात को एक अप्सरा आकर उसकी गोद में अपने शिशु अर्थपाल को दे गई और अपना तथा अपने पति का नाम बता गई और यह भी कि कैसे वह उस बालक को उनके पास कुबेर की आज्ञा से ले आई और फिर यह सब बतलाकर अन्तर्द्धान हो गई। मैं वही अप्सरा हूँ और तुम्हारी माता। अनुचित क्रोध और ईर्ष्या के वश होकर मैंने अपने पति अर्थात् तुम्हारे पिता कामपाल को त्याग दिया था, और इस पाप के फलस्वरूप माता दुर्गा ने मुझे श्राप दिया कि तू एक वर्ष तक प्रेत-योनि में रह! अपनी प्रेत-योनि का मेरा वह एक वर्ष कल्प के समान व्यतीत हुआ है, किन्तु कल वह समाप्त हो चुका है और इस समय मैं शिवरात्रि पूजन के उत्सव से लौटकर आ रही हूँ। वहाँ मुझे अपने सभी नातेदार मिल गये थे और माता भवानी ने मुझे बिलकुल क्षमा प्रदान करने की कृपा की और आशीष दिया।

"लौटते समय मैं इधर होकर निकली थी कि मैंने तुम्हें सोने की तैयारी और वनदेवी की प्रार्थना करते देखा। किन्तु क्योंकि तब तक

शाप का प्रभाव मेरे ऊपर से पूरी तरह मिटा नहीं था, इसी लिए मैं तुझे पहचान नहीं सकी। फिर भी अनजान समझकर भी मेरे हृदय में तेरे प्रति अनुराग उमड़ आया और तुझे इस निर्जन तथा भयानक वन में अकेले छोड़ने को मेरा मन नहीं हुआ। इसलिए जब तक तू गहरी नींद में सो नहीं गया, तब तक मैं दूर खड़ी प्रतीक्षा करती रही थी और यह सोचती रही थी कि मुझे अब देवी के दर्शन करने जाना है, तब तुझे कहाँ छोड़ जाऊँ; क्योंकि अपने साथ तो ले नहीं जा सकती थी, इसलिए मुझे सहसा ही यह बात सूझ गई कि मैं तुझे श्रावस्ती के राजा के महल में छोड़ सकती हूँ और लौटने पर फिर ले सकती हूँ। बस, यही ठीक विचार समझकर मैं तुझे आकाशमार्ग से श्रावस्ती के राजमहल में ले गई और वहाँ राजकुमारी नवमालिका के शयन-कक्ष में सुला दिया, क्योंकि मुझे विश्वास था कि वहाँ कोई तेरी निद्रा भंग नहीं करेगा। तत्पश्चात् मैं मन्दिर चली गई और वहाँ उचित रीति से मैंने शिव जी का पूजन किया। मेरे नातेदारों ने मुझे बधाइयाँ दीं और जाने की अनुमति देते हुए माता पार्वती ने मुझसे कहा—"जा पुत्री आज तेरा अभिशाप दूर हुआ। मैं तुझे क्षमा-दान देती हूँ और आशीर्वाद देती हूँ कि तू अपने पति के साथ रहकर सुखी जीवन व्यतीत करे!" देवी का आशीर्वाद लेकर मैं राजमहल लौट आई और तुझे सोता हुआ ही उठाकर फिर यहीं ले आई। भोर से ही मैं तेरे जागने की प्रतीक्षा कर रही थी, क्योंकि शाप के दूर होते ही मैंने पहचान लिया था कि तू ही मेरा पुत्र है।

"किन्तु अब मैं तुझसे बिदा लूँगी और तेरे पिता के पास जाऊँगी। रात राजकुमारी नवमालिका के शयन-कक्ष में जो कुछ हुआ वह मुझे

सब ज्ञात है—मैं जानती हूँ कि तू उसे प्यार करने लगा है और तेरे प्रति उसके हृदय की भावनाओं को भी मैं जानती हूँ और निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। शीघ्र ही वह तुझे फिर मिलेगी।"

यह कहकर उसने मुझे फिर छाती से चिपटाकर मेरा शीश चूम लिया और कहा—"मेरे लाल, तुझसे अलग होने को जी तो नहीं चाहता, परन्तु परवश जाना पड़ रहा है, किन्तु शीघ्र ही फिर तेरे पास आऊँगी और तब तक के लिए मेरा प्यार और आशीष ले!"

इतना कहकर वह चली गई।

इस प्रकार मुझे यह ज्ञात हुआ कि रात जो कुछ मैंने देखा था वह स्वप्न नहीं, सत्य ही था। और जिससे मैं प्रेम करने लगा हूँ, वह श्रावस्ती की राजकुमारी नवमालिका ही है, तब तो मेरे हर्ष का कोई पारापार न था और राजकुमारी के लिए मेरा प्रेम प्रतिपल बढ़ने लगा और उससे मिलने के लिए मैं व्याकुल हो उठा। शायद श्रावस्ती पहुँचने पर उससे किसी प्रकार भेंट हो सके, यह विचार कर मैंने श्रावस्ती के लिए प्रस्थान किया।

राह में एक ग्राम पड़ा, जहाँ एक बड़ा मेला लग रहा था और दूर-दूर के व्यापारी एकत्र हुए थे। अनेक आमोद-प्रमोद के खेल हो रहे थे। इनमें से एक तीतरों की लड़ाई भी थी, जिसे देखने के लिए मैं ठहर गया और एक बूढ़े ब्राह्मण की बगल में जा बैठा। वह लड़ाई को बड़े चाव से देख रहा था। मुझे हँसी आगई, जिसे देखकर उसने पूछा—"तुम हँसे क्यों?"

मैंने उत्तर दिया—"ये तीतरबाज भी बिलकुल मूर्ख हैं। अरे

बलाका नस्ल का तीतर नीरकेला नस्ल के तीतर के सामने भला क्या ठहरेगा ! देखना न अभी कि नीरकेला ही विजयी होगा !"

यह सुनकर उसने मेरी ओर अर्थभरी दृष्टि से देखा और धीरे से कहा—"चुप रहो बस ! तुम सब जानते हो ! बड़े चतुर हो ! पर यह मूर्ख कुछ नहीं जानते, इसलिए तुम कुछ बोलो मत, नहीं तो ये लोग अभी उखड़ जायेंगे !"

यह कहकर उसने अपनी जेब में से पान की डिब्बी निकाली और मुझे पान खिलाकर फिर बातचीत छेड़ दी।

उधर तीतरों का भीषण द्वन्द्व युद्ध होता रहा और दोनों ही पक्ष के लोग ज़ोर-ज़ोर से चीखते रहे, किन्तु जैसा कि मेरा अनुमान था बलाका तीतर हार गया ! बूढ़ा बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि विजयी तीतर उसी का तो था। अब तो उसके ऊपर मेरा प्रभाव और भी अधिक गहरा हो गया और फलस्वरूप हम लोगों की मित्रता हो गई, यद्यपि हम दोनों की अवस्थाओं में बहुत अन्तर था। उसने मुझे अपने घर पर आमन्त्रित किया और मेरा अति सत्कार किया और वह रात मैंने वहीं व्यतीत की।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर मैं श्रावस्ती चल दिया। वह मुझे कुछ दूर तक पहुँचाने आया और विदा होते समय बोला—"अपने इस नवीन मित्र को भूल मत जाना। जब भी आवश्यकता पड़े, मुझे स्मरण कर लेना। मैं अवश्य ही तुम्हारी सहायता करने पहुँचूँगा।"

इस प्रकार मुझे विदा करके वह घर लौट गया और मैं अपनी राह चल दिया। मुझे श्रावस्ती पहुँचते-पहुँचते बहुत रात हो गई और मैं थक भी बहुत गया था, इसलिए नगर के बाहर एक आश्रम में मैंने

रात काटी। वहाँ मैं बहुत गहरी और मीठी नींद सोया और प्रातःकाल जब समीपवर्ती एक झील में हंसों तथा अन्य पक्षियों का कलरव गान हुआ, तब उससे मेरी नींद खुली।

मुझे उठे हुए अभी बहुत देर नहीं हुई थी कि मैंने पायल की रुन-झुन सुनी और अपनी ओर एक नवयुवती को एक चित्र लिये आते देखा। जब वह समीप आ पहुँची, तब सर्वप्रथम उसने मेरी ओर देखा और फिर अपने हाथवाले चित्र को। इस प्रकार देखने की क्रिया उसने कई बार की, और मुझमें और उस चित्र में अंकित मुख में अद्भुत साम्य देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। तत्पश्चात् दृष्टि फिराकर मैंने भी एक झलक उस चित्र को देखा और यह देखकर कि वह मेरा ही चित्र था, मेरे आश्चर्य का कोई वारापार न रहा!

तत्पश्चात् मेरे मन में यह विश्वास हो गया कि मुझमें और चित्र में यह समानता केवल संयोगवश ही नहीं है, अपितु इसका भी कोई कारण अवश्य ही होना चाहिए कि उसने मेरे ही पास आकर मुझी से क्यों उसमें अंकित चित्र का मिलान किया और फिर प्रसन्न हो उठी, इसलिए मैंने इस विषय में एकाएक उससे कोई प्रश्न करना उचित नहीं समझा और केवल उससे यही कहा—"यह एक सार्व-जनिक स्थान है। यहाँ हमें शिष्टाचार प्रदर्शित करने की कोई आव-श्यकता नहीं है।आप कृपया यहाँ बैठ जाइए!"

तब उसने अपना मौन प्रथम बार भंग किया—"आप इस स्थान में नितान्त नवीन प्रतीत होते हैं और ऐसे लगते हैं जैसे किसी लम्बी यात्रा से आ रहे हों और अत्यन्त परिश्रान्त हों। यदि आप अनुचित न समझें,

तो कृपा करके मेरे घर चलकर विश्राम कीजिए और मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिए !"

"अनुचित !" मैंने उत्तर दिया—"यह तो मेरे ऊपर आपकी बड़ी कृपा है। मैं सहर्ष आपका आमंत्रण स्वीकार करता हूँ।"

मैं उसके साथ उसके घर गया। वहाँ मेरा बहुत आदर-सत्कार हुआ।

स्नान और भोजन करने के पश्चात् जब मेरी क्लान्ति कुछ मिटी, तब उसने मुझसे कहा—"आप अनेकानेक देशों का भ्रमण करके आ रहे हैं। क्या इन यात्राओं में आपके साथ कोई अत्यन्त अद्भुत और महत्त्वपूर्ण घटना हुई है?"

यह प्रश्न सुनकर मैंने तत्काल मन में कहा—"अब तो आशा पूरी होती दिखाई देती है, क्योंकि इस चित्र में तो राजकुमारी नवमालिका के उसी शयन-कक्ष का दृश्य अंकित है, जिसमें मैं कुछ समय तक सोया था। इसमें राजकुमारी की शय्या भी अंकित थी। मेरे प्रेम के वश होकर उसने निस्संदेह केवल अपनी स्मृति-मात्र से ही मेरा चित्रांकन किया है। और इस आशा से कि कदाचित् मैं मिल जाऊँ, उसने इस युवती को यह चित्र खोजने के लिए सहायतार्थ दे रक्खा है और अब मुझे पा जाने पर इसने इसी कारण मुझे अपने घर पर आमंत्रित किया है। अब इसे यह तो विश्वास हो ही गया है कि मैं ही राजकुमारी का प्रेमी हूँ, परन्तु तब भी वह मुझसे ऐसी बात एकदम सीधे पूछने से डरती है और किसी तरह मेरे ही मुँह से जान लेना चाहती है। और यदि मेरा यह अनुमान ठीक है, तब मुझे शीघ्र ही इसका सन्देह दूर कर देना चाहिए।"

इसी विचार से मैंने उससे पूछा—"क्या आप मुझे वह चित्र देखने की अनुमति देंगी?"

उसने वह चित्र लाकर मुझे दे दिया और उसमें मैंने राजकुमारी की सूनी शय्या पर नवमालिका को उसी रूप में चित्रित कर दिया जिसमें कि उस रात्रि को मैंने उसे प्रथम बार देखा था और तत्पश्चात् चित्र लौटाते हुए मैंने कहा—"एक रात को जब मैं एक निर्जन वन में सो रहा था, तब मैंने एक बड़ा विचित्र स्वप्न देखा था। जैसा शयन-कक्ष इस चित्र में प्रदर्शित है, वैसे ही एक शयन-कक्ष में मैंने अपने को सोते हुए देखा और वहीं एक शय्या पर एक सुन्दरी भी सोती हुई देखी, जिसका चित्र मैंने अभी इसमें अंकित कर दिया है। किन्तु वह सब स्वप्न से अधिक और क्या हो सकता है?"

मेरी बात सुनते ही उसका मुख हर्ष से चमक उठा और वह बोली—"वह आपका स्वप्न नहीं, प्रत्युत एक सत्य घटना थी, और वास्तव में मैं आपको ही खोज रही थी।"

तत्पश्चात् उसने मुझे पूरी कहानी सुनाई कि किस प्रकार राजकुमारी ने मुझे देखा और प्रथम दृष्टि में ही मुझसे प्रेम करने लगी और किस प्रकार उसने अपनी स्मृतिमात्र से मेरा यह चित्र अंकित करके उसे दे दिया जिससे कि वह इसकी सहायता से मुझे खोज लाये। और अन्त में वह बोली—"यह समाचार पाकर वे न जाने कितनी प्रसन्न होंगी!"

मैंने उत्तर में उससे कहा—"कृपा करके मेरी ओर से भी राजकुमारी से कह देना कि मैं तुम्हारे दर्शन करने के लिए तुमसे भी अधिक अधीर और आकुल था और केवल तुम्हारे दर्शनों की आशा लेकर ही श्रावस्ती आया हूँ।" हाँ, मैंने उससे आगे कहा—"यदि तुम्हारी सहेली मुझ पर कृपा करने को उद्यत हों, तब उनसे कहना कि कुछ समय तक और धीरज धरें। मैं शीघ्र ही कोई न कोई ऐसी युक्ति अवश्य ही करूँगा

जिससे कि हम लोगों का मिलन उसी शयन-कक्ष में सुविधापूर्वक हो सके।"

वह मेरे इस प्रस्ताव से सहमत हो गई और मैं उससे विदा लेकर अपने मित्र वृद्ध ब्राह्मण के पास लौट आया।

वे घर पर ही थे और मुझे देखकर अतीव प्रसन्न हुए और तुरन्त ही पूछने लगे—"अरे भाई, इतनी जल्दी कैसे लौट आये? क्या कोई ऐसी बात है जिसके लिए तुम्हें मेरी सहायता की आवश्यकता है?"

"हाँ, है"। मैंने उत्तर दिया—"और एक अत्यन्त अनिवार्य कार्य है, जिसमें तुम मुझे वास्तव में सहायता दे सकते हो। श्रावस्ती के राजा धर्मवर्द्धन का नाम तो तुमने सुना ही होगा। वे अपने नाम के अनुरूप ही शीलवान् तथा चरित्रवान् हैं—यथा नाम तथा गुण—उनके एक अनुपम सुन्दरी पुत्री है, जिसे एक विचित्र परिस्थिति में मैंने देख लिया था और देखते ही उससे प्रेम भी करने लगा और मुझे कुछ कारणवश यह भी विश्वास है कि वह भी मुझसे इतना ही प्रेम करने लगी है, किन्तु अब समस्या यही है कि उससे मिलन किस प्रकार हो—इसके लिए कोई युक्ति निकालनी होगी, और यह काम सफलतापूर्वक करने में तुम्हीं केवल मेरी सहायता कर सकते हो। बोलो क्या कहते हो?"

"तुमने क्या युक्ति सोची है?" उसने पूछा—"और उस युक्ति को सफल बनाने के लिए मैं क्या करूँ?"

"मेरी युक्ति यह है" मैंने उत्तर दिया—"कि मैं नारी का भेष रखकर तुम्हारी पुत्री बन जाऊँगा, और फिर तुम्हारा काम यह है कि तुम मुझे श्रावस्ती के राजा के रनिवास में राजकुमारी की दासी नियुक्त

करा दो और ऐसा प्रबन्ध करो कि उससे मेरा विवाह भी हो जाय। मुझे तुम्हारे चातुर्य और कौशल में पूरा विश्वास है।"

वह मेरे इस प्रस्ताव से सहमत हो गया और तत्काल ही सहायता करने को प्रस्तुत भी। तत्पश्चात् शीघ्र ही हम लोग बड़े उत्साह के साथ इस युक्ति को कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्नों में संलग्न हो गये।

जिस दिन राजा न्याय करने के लिए एक सार्वजनिक दरबार करनेवाले थे, उसी दिन हम लोग वहाँ पहुँच गये। बूढ़ा ब्राह्मण आगे आगे था, और मैं उसकी पुत्री के भेष में लजाता हुआ पीछे-पीछे चल रहा था। राजा के सन्मुख पहुँचकर मेरे मित्र ने झुककर राजसी अभिवादन किया और तब राजा से कहा—"हे राजन्! मैंने आपकी दया और उदारता की बड़ी ख्याति सुनी है—आप अपनी प्रजा के पालक हैं, एकमात्र रक्षक हैं, पितृ-तुल्य हैं और निरुपाय, निरीह तथा निर्धनों के सहायक हैं, आश्रयदाता हैं। इसी कारण मैं आपकी सेवा में कुछ याचना करने आया हूँ।" फिर मेरी ओर संकेत करके कहा—"यह कन्या मेरी पुत्री है। इसके जन्म के कुछ काल पश्चात् ही इसकी माता का देहान्त हो गया और तब से मैंने ही इसका पालन-पोषण किया है और अपनी आँखों के तारे की भाँति ही इसे सदैव अपने पास रक्खा है—कभी क्षण भर को भी अलग नहीं किया है। किन्तु अब यह विवाह-योग्य हो आई है और मैं शीघ्र ही इसका विवाह करके इसके भार से मुक्त हो जाना चाहता हूँ और इसे सुखी देखना चाहता हूँ। बहुत दिन हुए तभी मैंने इसकी सगाई एक ब्राह्मण युवक से कर दी थी, जो फिर विद्याध्ययन तथा धनोपार्जन करने के लिए उज्जैन चला गया था। मैं उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था, पर तब से उसका कोई समाचार

भी मुझे ज्ञात नहीं हुआ है। इसलिए मैं अपनी इस कन्या के विवाह के लिए अत्यन्त चिन्तित हूँ और इसके लिए उस लड़के का पता लगाने मुझे उज्जैन जाना ही पड़ेगा, परन्तु मैं इसे अकेली तो नहीं छोड़ सकता और क्योंकि मेरे कोई ऐसे सगे-सम्बन्धी भी नहीं हैं, जिनके पास मैं इसे छोड़ जाऊँ, इसलिए क्या राजन् आप मेरे लौटने तक अपने यहाँ इसे आश्रय देकर इसकी रक्षा करेंगे ?"

राजा ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और इस प्रकार मैं अन्दर रंगमहल में जा पहुँचा और शीघ्र ही राजकुमारी नवमालिका को अपने इस प्रकार भेष बदलकर आने की सूचना दे दी। सूचना पाते ही उसने तुरन्त मुझे अपने पास बुला लिया और दासी के रूप में रख लिया।

इस प्रकार हम दोनों की कामना पूरी हुई और मधुर मिलन के मधुर सुख का उपभोग हमने निश्चिन्त और निर्विघ्न होकर किया! किन्तु अभी तो इस मिलन को सदैव के लिए स्थायी बनाने का कार्य शेष था। इसलिए जब मेरे ब्राह्मण मित्र के लौटकर आने का समय समीप आ पहुँचा, तब मैंने अपनी प्रेयसी राजकुमारी से कहा—"कल, जैसा तुम्हें ज्ञात ही है, गंगा जी के किनारे घाट पर एक मन्दिर में तुम्हें पूजा करने के लिए आना है और तब तुम्हें वहाँ स्नान करने का अवसर भी प्राप्त होगा। जब हम तुम मिलकर गंगा जी में नहाते होंगे, तभी मैं डूबने का बहाना करके सहायता के लिए पुकारूँगा, किन्तु इतने में ही डुबकी लेकर अन्दर ही अन्दर तैर जाऊँगा और दूर किनारे पर जाकर निकलूँगा, जहाँ कुछ झाड़ियाँ भी हैं। क्यों, क्या मेरी ऐसी मृत्यु से भी बहुत घबराती हो प्रिये! डरो नहीं रानी! मैं शीघ्र ही आकर तुमसे फिर मिलूँगा!"

अपने इसी निश्चय के अनुसार दूसरे दिन गंगा जी में राजकुमारी के साथ अपने लड़की के वेष में नहाते हुए मैंने कुछ गहराई में जाकर एक डुबकी ली और "डूबी-डूबी! बचाओ! बचाओ!" कहकर चिल्ला पड़ा। जहाँ कोई बचानेवाला भला कौन था। मैं चुपचाप अन्दर ही अन्दर तैर गया, और जिस जगह पर मित्र से मिलने का ठीक किया था, वहीं पर जल से निकलकर मैं किनारे पर झाड़ियों में आया। मेरा ब्राह्मण-मित्र पहले से ही मेरी मर्दानी पोशाक लिये उपस्थित था, जिसे पहनकर मैं चुपचाप उसके साथ नगर में चला गया। मेरे इस प्रकार एकाएक डूबने से वहाँ अत्यन्त गड़बड़ी मची। मेरा शव खोजने के लिए जाल डाले गये, पर यदि मैं मरा होता, तब तो उन्हें मेरा शव मिलता।

दूसरे दिन ब्राह्मण मुझे लेकर राजदरबार में पहुँचा, जैसे उसे कल अपनी पुत्री के गंगा जी में डूब मरने का बिलकुल कोई ज्ञान ही नहीं था। उसने राजाधिराज से यथायोग्य अभिवादन करने के पश्चात् कहा—

"राजन्! मैं उज्जैन से लौट आया हूँ और" मेरी ओर संकेत करके कहा—"इस लड़के को जिसके साथ मेरी कन्या की सगाई हुई थी, अपने साथ ही लेता आया हूँ। मैं अपने इस भावी जमाता से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। वहाँ उज्जैन में मैंने इसके गुणों की बहुत प्रशंसा सुनी थी। यह न केवल चारों वेदों तथा उनके भाष्यों में पारंगत है तथा चौसठों विद्याओं और कलाओं में निपुण है, अपितु राजनीति और इतिहास का भी विद्वान् है। इसके अतिरिक्त कविता सुनाने और कहानी कहने में भी कुशल है। कटार चलाने, बाण साधने और घोड़े की सवारी करने में तो विशेष रूप से अभ्यस्त है। ऐसा कोई पुरुषोचित गुण नहीं है, जिससे यह युवक सम्पन्न न हो, और इतना सब होते हुए भी अत्यन्त

विनम्र और विनयशील है। बस इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि यह सभी भाँति सम्पूर्ण तथा योग्य वर है और ऐसा योग्य वर तो मुझ जैसे ग़रीब की अयोग्य कन्या के लिए तो क्या, किसी राजकुमारी के उपयुक्त है। अब तो बस अपनी पुत्री का विवाह शीघ्र ही इसके साथ करके मैं भगवद्-भजन करने के लिए वन की राह लूँगा और ये दोनों मिलकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करेंगे। और आपने मेरी कन्या को आश्रय देकर तथा उसकी रक्षा करके मेरा जो उपकार किया है, उसके लिए मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ और अन्तःकरण से धन्यवाद देता हूँ और भगवान् से आपकी दीर्घायु के लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ।" यह कहकर उसने साष्टांग दण्डवत् किया।

यह सुनकर राजा अत्यन्त चिन्तित हुए और बड़ी उलझन में पड गये, किन्तु किसी तरह उन्होंने ब्राह्मण को सूचना दी कि तुम्हारी कन्या गंगा जी में नहाते-नहाते एकाएक डूब गई और फिर लाख यत्न करने पर भी उसके शव तक का पता नहीं चला।

यह सूचना पाते ही वृद्ध ब्राह्मण अपने कपड़े फाड़ने लगा, बाल नोचने लगा, छाती और सिर पीट-पीटकर दहाड़-दहाड़ मार-मारकर रोने-चिल्लाने लगा—"तू बड़ा पापी है! तूने ही मेरी निर्दोष कुमारी कन्या की हत्या की है! तुझे मेरी जीवित कन्या लाकर देनी होगी! नहीं तो मैं यहीं तेरे महल के द्वार पर सिर पटक-पटककर प्राण तज दूँगा और तेरे ऊपर ब्रह्महत्या का पाप पड़ेगा!"

राजा ने ब्राह्मण को अनेक प्रकार से समझाने-बुझाने के प्रयत्न किये, पर वह किसी तरह भी नहीं माना, नहीं माना। अन्त में खीझकर राजा ने अपने मंत्रियों से परामर्श करके उससे कहा—"तुमने अभी-अभी



कहा था कि तुम्हारा यह भावी जामाता असाधारण गुण-सम्पन्न है और यह तुम्हारी कन्या की अपेक्षा किसी राजकुमारी का पति बनने के योग्य है और वास्तव में इसका व्यक्तित्व भी अति भव्य और प्रखर है, तब मैं तुम्हारी कन्या के बदले में इसके साथ अपनी राजकुमारी कन्या का विवाह कर दूंगा—तब तो तुम्हे सन्तोष हो जायगा ?"

वृद्ध ब्राह्मण ने राजा की बड़ी अनुनय-विनय के बाद इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दी और सन्तोष प्रकट किया।

राजा ने तत्काल ही मेरा बड़ा आदर-सत्कार किया और शुभ-मुहूर्त में राजकुमारी नवमालिका का विवाह मेरे साथ कर दिया और इस प्रकार मेरे जीवन की सर्वोच्च आकांक्षा और सर्वप्रिय कामना पूरी हुई।

ग़ज़नी का क़ाज़ी

—फ़ारस

ग़ज़नी के सुल्तान महमूद सुबुक्तगीन की बादशाहत में एक आदमी अज़रबैजान से हिन्दुस्तान जा रहा था। रास्ते में वह जब ग़ज़नी में ठहरा, तो उसे यहाँ की आबहवा बहुत पसन्द आई और उसने वहीं बस जाने का इरादा कर लिया और रहने भी लगा।

यह आदमी तिजारती मामलों में बहुत होशियार था, इसलिए वह ग़ज़नी के बाज़ार में दलाली का काम करने लगा और इस काम में उसे ख़ूब आमदनी होने लगी। उसने अपनी शादी करने का इरादा किया और क्योंकि इन दिनों उसके भाग्य का सितारा चमक रहा था, इसलिए उसे एक निहायत पाक और नेक ख़ूबसूरत लड़की मिल गई, जिससे उसने जल्द ही शादी कर डाली।

धीरे-धीरे उसकी आमदनी बढ़ती गई और उसने इतना माल इकट्ठा कर लिया कि वह ग़ज़नी के गिने-चुने रईसों में गिना जाने लगा। तब उसने कुछ तिजारत हिन्दुस्तान से भी करनी चाही, लेकिन क्योंकि वहाँ जाना एक बार ज़रूरी था, इसलिए उसने सफ़र की तैयारी करनी शुरू कर दी। पर बीच में ही एक बड़ी अड़चन यह आ पड़ी कि वह अपनी बीबी को कहाँ, किसके पास छोड़ जाय! वहाँ ग़ज़नी में उसका कोई ऐसा रिश्तेदार या दोस्त नहीं था, जिस पर वह यक़ीन करके उसके पास अपनी बीबी को छोड़ जाता और यह हर शख़्स का पहला

फ़र्ज़ है कि वह ऐसे मामलों में होशियारी और अक्लमंदी से सोच-समझकर काम करे जिससे उसकी इज्ज़त में बट्टा न लगे और बदनामी न हो। इसलिए यही परेशानी थी उसे कि बीबी को बिना किसी भले आदमी के पास छोड़े हिन्दुस्तान का सफ़र करना मुश्किल हो रहा था।

दलाल ने शहर के क़ाज़ी की बहुत तारीफ़ सुन रखी थी कि वह बड़ा पाक, साफ़ और नेकदिल और इंसाफ़-पसन्द आदमी है। इसलिए बहुत सोचने के बाद दलाल ने अपने मन में कहा—"अगर मैं ऐसे पाक-दिल और नेकनियत इन्सान के पास अपनी बीबी को सौंप जाऊँ, तो किसी गड़बड़ की उम्मीद नहीं की जा सकती और फिर ग़ज़नी के अमीर और ग़रीब सभी इसपर यकीन करते हैं और यह सभी पर रहम करता है, इसलिए मेरी यह दरख्वास्त नामंज़ूर नहीं करेगा, ऐसा मेरा ख्याल है।"

यही इरादा करके दलाल एक दिन क़ाज़ी के पास जाकर कहने लगा—

"सच के इंसाफ़ की पाकगद्दी के ऐ मालिक! आपकी अक़्लमंदी और दूरंदेशी मज़हबी और दुनियावी मामलों की पेचीदी बातों को सुलझाती है और आपकी पाक ज़ुबान से निकले कलाम ही क़ायदे-क़ानून बन जाते हैं—और या खुदा! आपकी नेक सलाह पाक-दिल आदमियों को भलाई का सीधा रास्ता दिखाती रहे! मैं आपके शहर का रहनेवाला हूँ और हुज़ूर आपके इस ख़िदमतगार की तबीअत हिन्दु-स्तान जाकर कुछ तिजारत करने को हो रही है, पर नाचीज़ की जवान बीबी की पीछे देखभाल करनेवाला कोई नहीं है, और क्योंकि उसकी शर्म और अस्मत की खूबसूरत पत्ती अभी तक हरी है, इसलिए मुझे डर

हूँ कि कहीं कोई मेरे पीछे उस भोली और नेकचलन को बहका न ले, इसलिए मैं उसे हुजूर की देखभाल में छोड़ जाना चाहता हूँ।"

दलाल की इस दरख्वास्त पर क़ाज़ी ने अपनी मंजूरी की मुहर लगाते हुए कहा कि मैं उसकी देखभाल करूँगा।

दलाल हिन्दुस्तान चलने से पहले अपनी बीवी को क़ाजी साहब के पास छोड़ आया और उसे साल भर तक के लिए जरूरी खर्च भी दे दिया।

क़ाज़ी के घर में दलाल की बीवी अपना सारा वक्त नमाज़ और इबादत में काटती थी और इसी तरह क़रीब-क़रीब उसने एक साल काट दिया, लेकिन तब तक उसकी खूबसूरती के खजाने की तरफ किसी की बुरी नजर नहीं उठी और न अपने कानों के बाग में उसकी आवाज़ की चिड़िया को चहचहाते ही किसी ने सुना।

पर एक दिन अचानक ही क़ाज़ी की नजर उसपर पड़ गई, उसने देखा कि उसके बालों के लच्छों में लैला का हुस्न थिरक रहा है और उसके चाँद-से मुखड़े पर जो प्यार और उदासी छाई हुई थी, उसने उसके हुस्न में एक अजीब मीठी नज़ाकत भर दी थी, जिसे देखते ही क़ाज़ी के मन का मजनूँ बेचैन हो उठा और फ़रहाद की तरह अपनी रूह का पहाड़ खोदने लगा, जो बेकली की आग में अंगारे-सा तप रहा था। उसकी अस्मत लूटने को वह पागल हो उठा, लेकिन उसको नेकचलन और पाकदामन जानकर उसे उसको छूने तक की हिम्मत नहीं हुई।

एक दिन इत्तफ़ाक़ से क़ाज़ी के बीवी-बच्चे हम्माम नहाने चले गये और घर की रखवाली दलाल की बीवी पर छोड़ गये। उसे अकेला

पाकर क़ाजी उसके हूर के-से हुस्न का मजा लूटने के लिए टूट पड़ा उसने चीखकर कहा—"जो चीज आज तक मेरे लिए आसमान का चाँद हो रही थी, वही मेरी बुलन्द तकदीर के जाल में जमीन पर आकर फँस गई है।"

उसने कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया और दलाल की बीबी की नेकचलनी की तारीफ़ करके उसकी खुशामद करनी शुरू की—

"ऐ नेकचलन औरत, मेरी ईमानदारी और नेकनीयत की नामवरी दुनिया के कोने-कोने में फैली हुई है। अपने नेक और पाक चाल-चलन से जिन्नत की हूरें भी मुझे एक तिल भर भी नहीं डिगा सकतीं, तब तुम मुझसे इतना बच-बचकर और दूर-दूर क्यों रहती हो ? अगर अक्ल-मंदी की और मामलों की जानकारी की कमी की वजह से तुम अपने हुस्न को शर्म के पर्दे में ढके रहती हो, तो मैं तुम्हें यक़ीन दिलाता हूँ कि अल्लाहताला के क़ायदे-कानूनों के खिलाफ़ मैं कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि क़यामत के दिन दोजख मिलने का डर मुझे है और इसी लिए मुहब्बत के जोश की आग को मैं अपने अन्दर भड़कने नहीं देता। मैं तुम्हें अपनी एक नजर से भी बेचैन नहीं करूँगा। इसलिए मेहरबानी करके डर का पर्दा अपने मुखड़े से हटा दो और हँसो-बोलो, इसमें कोई बद-चलनी और जुर्म नहीं है और हालाँकि अपने मेहमान से किसी भी तरह की खिदमत कराना खुदा और उसके पैग़म्बर दोनों के ही क़ायदों के खिलाफ है, फिर भी क्योंकि अब तुम मेरे ही घर की एक जान हो, इस-लिए मैं तुमसे अपने लिए कुछ मेहरबानी की भीख माँग सकता हूँ। इस वक्त मुझे भूख बहुत जोरों से लग रही है, इसलिए मेरे लिए कुछ खाना ले आओ।"

दलाल की नेकचलन बीबी शर्म का पर्दा अपने चेहरे पर डाले ही रही और क़ाज़ी के साथ पूरी तमीज के साथ बर्ताव करती रही। उसके सामने खाना रखकर वह एक तरफ़ कोने में जाकर बैठ गई।

क़ाज़ी ने अपने पास पहले से ही एक ऐसी दवाई रख छोड़ी थी, जिसके खाने से आदमी बेहोश हो जाता था कुछ देर के लिए। यह दवाई वह दलाल की बीबी को किसी तरह खिला देना चाहता था जिससे वह बेहोश हो जाय, और वह उसके अनजाने में ही उसके व्रत को तोड़ दे। इसी ग़रज़ से उसने कहा—"तुम शायद नहीं जानती की क़यामत के दिन तीन तरह के इन्सानों पर खुदा रहम नहीं करता—एक तो उन्हें जो अकेले खाना खाते हैं, दूसरे जो अकेले सोते हैं और तीसरे जो अकेले सफ़र करते हैं। आज तक मैं किसी न किसी के साथ खाना खाता रहा हूँ, लेकिन आज शायद शैतान की नज़र मुझ पर है कि मुझे अकेले ही खाना पड़ रहा है और मेरी आकबत बिगड़ी जा रही है ज़रा-सी बात से। इसलिए मेहरबानी करके तुम मेरे साथ बैठकर कुछ खा लो और मेरे ऊपर से इस शैतान को दूर करो; नहीं तो क़यामत के दिन मुझे दोज़ख़ की सज़ा मिलेगी।"

इसी तरह क़ाज़ी ने उसकी इतनी खुशामद की कि बेचारी टाल न सकी और उसके साथ बैठकर खाना खाने लगी। उसकी नज़र बचाकर क़ाज़ी ने खाने की एक चीज़ में वही दवाई मिला दी और इसका नतीजा यह हुआ कि दो-चार कौर उस चीज़ के खाने के बाद वह बेहोश होने लगी और आखिर बेहोश होकर फ़र्श पर गिर पड़ी।

क़ाज़ी ने उसे अपनी गोद में उठाकर चूम लिया और उसे सेज पर लिटाने ही वाला था कि बाहर दरवाज़े पर शोर हुआ। कोई ज़ोर-

ज़ोर से दरवाज़ा खटखटा रहा था। क़ाज़ी घबराकर अलग हो गया और जल्दी से उसने उसके कपड़े ठीक किये और उसे छिपाने की फ़िक्र करने लगा। उसे अपने ख़ज़ाने के तहख़ाने का ख़याल आया, जिसकी चाभी उसी के पास मौजूद थी। बस फ़ौरन ही उसने तहख़ाना खोला और दलाल की बेहोश बीबी को गोद में उठाकर वहाँ ले गया और बन्द कर दिया।

तब जाकर उसने दरवाज़ा खोला और देखा कि बीबी-बच्चे हम्माम से लौट आये हैं। छूटते ही उन लोगों से कहा—"तुम लोग घर ख़ाली छोड़कर क्यों चले गये थे?"

क़ाज़ी की बीबी ने जवाब दिया—"मैं तो दलाल की बीबी को रखवाली करने के लिए छोड़ गई थी।"

क़ाज़ी ने कहा—"दो घंटे हुए जब मैं घर लौटा हूँ और तब से घर में कोई दिखाई नहीं पड़ा मुझे। तुमने एक अजनबी पर क्योंकर यक़ीन कर लिया? हो सकता है कि वह कुछ चुरा भी ले गई हो!"

उन सबको यह सुनकर बड़ा ताज्जुब हुआ, कि इतनी सीधी और ईमानदार औरत भी ऐसा कर सकती है। उसे हो क्या गया था। जब वे आपस में इसी तरह बातचीत कर रहे थे कि दलाल हिन्दुस्तान से लौटकर क़ाज़ी के पास अपनी बीबी वापस लेने आया।

क़ाज़ी ने कहा—"कुछ दिन हुए तुम्हारी बीबी मेरे यहाँ से बग़ैर किसी से कुछ कहे चली गई।"

यह सुनकर दलाल ने कहा—"हुज़ूर, इस नाचीज़ और अपने ख़िदमतगार से मज़ाक़ न कीजिए। जाइए मेरी बीबी को भेज दीजिए।"

काज़ी ने क़सम खाकर कहा—"मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा था दलाल। बिलकुल सच कह रहा हूँ!"

लेकिन दलाल ने फिर कहा—"मैं अपनी बीबी की आदतों को अच्छी तरह जानता हूँ। वह ज़रा भी बदचलन नहीं है जो इस तरह घर छोड़कर चली जाय।" मुझे दाल में कुछ काला मालूम पड़ता है काज़ी साहब!"

यह सुनते ही काज़ी ने गुस्सा दिखाया। "बिगड़ता क्यों है बे! बेवक़ूफ़ आदमी! तेरी इस जुर्रत पर मुझे नाराज़ होना चाहिए था, पर उलटा तू ही ख़फ़ा हो रहा है। उलटा चोर कोतवाल को डाँटे! तू बेहूदा बातें बककर मेरी बेइज्जती करना चाहता है? जा, ढूँढ़ जाकर जहन्नुम में अपनी उस सतवन्ती बीबी को!"

यह सुनकर दलाल चुपचाप लौट गया, लेकिन क्योंकि वह बीबी उसे जान से ज्यादा प्यारी थी, इसलिए उसके इस तरह बिछुड़ जाने से वह बेचैन हो उठा और सीधा सुल्तान महमूद सुबुक्तगीन के दरबार में शिकायत लेकर पहुँचा।

दरबार में पहुँचते ही दलाल ने झुककर शाही आदाब बजाया और कहा—"शहंशाह आलम! ख़ुदा करे इन्साफ़ आपकी सल्तनत में हर वक़्त हाथ बाँधे आपकी ख़िदमत में खड़ा रहे। शहर के क़ाज़ी ने मेरे साथ ग़ैर-इंसाफ़ी की है आलीजाह! अगर शहंशाह का हुक्म हो, तो मैं सारा क़िस्सा सुनाऊँ!"

सुल्तान ने कहा—"कहो, क्या कहना है?"

तब दलाल ने कहा—

"आलीजाह! यह नाचीज अज़रबैजान का रहनेवाला है, जो हुज़ूर के इंसाफ़ और ग़रीब-परवरी की शोहरत सुनकर ग़ज़नी में बसने

चला आया था। आलीजाह का यह खिदमतगार कई बरस से आपकी रहमदिली और इंसाफ के जेरसाये रहता आया है। सरकार अदना के एक जवान और खूबसूरत बीवी है जिसे हिन्दुस्तान जाते वक़्त में शहर-क़ाज़ी की हिफ़ाजत में छोड़ गया था। उसकी जवानी और खूबसूरती पर क़ाज़ी की नीयत बिगड़ गई और अब वह मुझे मेरी बीवी वापस करने से इनकार करता है!"

सुल्तान के हुक्म से फ़ौरन क़ाज़ी पेश किया गया। शहंशाह ने उससे दलाल की शिकायत का जवाब तलब किया।

काज़ी ने अपनी सफ़ाई पेश की—"शहंशाह को इन्साफ़ हमेशा रोशन रहे और दुश्मन तबाह हों! इस आदमी ने अपनी बीवी मेरी रखवाली में छोड़ दी थी, लेकिन तीन महीने हुए जब वह बिना मुझसे पूछे या कोई इत्तला दिये ही मेरे घर से भाग गई और अभी तक वापस लौटकर नहीं आई है! आलीजाह आपके इस खिदमतगार ने कोई क़सर उसे तलाश करने में उठा नहीं रक्खी, फिर भी वह न मिली, न मिली!"

यह सुनकर दलाल ने जवाब दिया—"ग़रीबपरवर ! मेरी औरत निहायत नेकचलन है। उसके पाकदामन पर कोई किसी किस्म का दाग़ नहीं है। इसलिए मैं क़ाज़ी के कहने में यक़ीन नहीं करता, आलीजाह! आप इन्साफ कीजिए!"

सुल्तान ने काजी से पूछा—"तुम्हारे गवाह कहाँ हैं? उन्हे पेश करो।"

शहंशाह के हुक्म से क़ाज़ी ने फ़ौरन ही अपने कई गवाह पेश कर दिये, जिन्हें वह अपने साथ लेता आया था। यह गवाह शहर के छँटे

हुए शोहदे थे और क़ाज़ी ने इन्हें रिश्वत दे-देकर झूठी गवाही देने के लिए तैयार कर लिया था।

गवाहों की पेशी हुई और उन सभों ने एक मुँह क़ाज़ी के बयान की ताईद की। तब सुल्तान ने दलाल से कहा—

"क़ाज़ी ने अपनी बात का सबूत गवाह पेश करके दिया है। इसलिए तुम्हारी शिकायत झूठी है और मैं तुम्हारी दरख्वास्त खारिज करता हूँ।"

बेचारा दलाल हताश होकर लौट आया।

× × × ×

ग़ज़नी के सुल्तान महमूद सुबुक्तगीन की यह आदत थी कि वे रात को भेष बदलकर शहर के बाज़ार, गलियों और कूचों में अपनी रिआया की असली हालत देखने और अपने बारे में लोगों की राय जानने के लिए घूमा करते थे।

जिस दिन दलाल की शिकायत का उन्होंने फ़ैसला सुनाया था, उसी रात को वे फिर भेष बदलकर ग़ज़नी में घूमने निकले। जब एक दूकान के पास से वे गुज़रे, तब उन्होंने वहाँ कुछ लड़कों को इकट्ठे देखा और उनके कान में अपने नाम की-सी कुछ भनक पड़ी। इसलिए वे पास ही छिपकर उनकी बातें सुनने लगे।

वे असल में 'बादशाह और वज़ीर' का तमाशा कर रहे थे। एक लड़का, जो बादशाह बना था, कह रहा था—"मैं इस मुल्क का बादशाह हूँ, इसलिए तुम सब मेरी रिआया हो और तुम्हें मेरी हुक्मउदूली नहीं करनी चाहिए।"

लेकिन एक दूसरे लड़के ने उठकर कहा—"आलीजाह! अगर

आप सुल्तान महमूद सुबुक्तगीन की तरह ग़लत इन्साफ़ करेंगे, तो हम आपको फ़ौरन तख़्त से उतार देंगे!"

लड़के बादशाह ने पूछा—"सुल्तान महमूद ने कौन-सा इन्साफ़ ग़लत किया है?"

उसी लड़के ने फिर जवाब दिया—"आलीजाह! आज सुल्तान के सामने एक दलाल की शिकायत पेश हुई थी। उस दलाल ने हिन्दुस्तान जाते वक़्त अपनी नौजवान और हसीन बीवी को शहर-क़ाज़ी की हिफ़ाज़त में रख दिया था, लेकिन जब वह सफ़र से वापस लौटा, तब क़ाज़ी ने उसकी बीवी देने से इनकार किया और यह बहाना किया कि वह भाग गई और अपने झूठ को सच्चा साबित करने के लिए उसने रिश्वत देकर शहर के कुछ शोहदे पकड़ लिये और उनसे सुल्तान के सामने झूठी गवाही दिलवाकर दलाल की शिकायत रद्द करा दी और उसकी हसीन बीवी हज़्म कर ली। लेकिन अगर मैं सुल्तान की जगह होता, तो सच जानने की कोशिश करता और काज़ी को कड़ी सज़ा देता!"

इन लड़कों की बातचीत सुनकर सुल्तान महमूद सुबुक्तगीन को बड़ा ताज्जुब हुआ और अफ़सोस भी। उनका दिमाग़ परेशान हो गया और वे महल लौट गये। रात भर वे अच्छी तरह सो भी नहीं सके और सुबह होते ही उन्होंने एक नौकर भेजकर उसी लड़के को बुलाया, जिसने रात को उनके फ़ैसले की आलोचना की थी।

नौकर ने लड़के को पेश किया, लेकिन सुल्तान ने उसके साथ बड़े प्यार का बर्ताव किया और पास बिठालकर पूछा—"आज सुबह से शाम तक तुम मेरी जगह बादशाहत करो और मैंने जो फ़ैसला कल दिया

है, उसकी जाँच करो! तुम बिलकुल आजादी से जो चाहो फ़ैसला दे सकते हो।"

इसके बाद सुल्तान ने दलाल को बुलाने का हुक्म दिया।

दलाल भी फ़ौरन ही हाजिर हो गया और उसने अपनी कलवाली शिकायत फिर उस लड़के के सामने दोहरा दी।

सबके बाद बादशाह ने क़ाज़ी और उसके गवाहों को बुलाया।

क़ाज़ी अपने गवाहों को लेकर दरबार में हाजिर हुए और खड़े न रहकर अपनी गद्दी पर बैठने लगे।

तभी लड़के बादशाह ने उन्हें रोक दिया—"ऐ क़ाज़ी! आप बरसों से क़ायदे-क़ानूनों को जानते हैं और उनकी मदद से दूसरों के साथ इन्साफ़ करते रहे हैं—तब भी आप क़ानूनी तरीक़ों से अनजान क्यों हैं? यहाँ दरबार में इस वक़्त आप बतौर मुजरिम के पेश किये गये हैं, न कि क़ाज़ी की शक्ल में! इसलिए कायदे के मुताबिक़ आपको नीचे खड़ा रहना चाहिए जब तक मुक़दमे का फ़ैसला न हो जाये, और तब आपको शहंशाह के फ़ैसले को मानना पड़ेगा!"

तब क़ाज़ी दलाल के बराबर खड़े हो गये और फिर उन्होंने उसकी बीबी के बारे में अपनी वही सफ़ाई पेश की कि वह तीन महीने हुए मेरे घर से भाग गई।

यह सुनकर लड़के बादशाह ने पूछा—"तुम्हारा कोई गवाह है?"

क़ाज़ी ने अपने गवाहों की तरफ़ इशारा करके कहा—"वे हैं आलीजाह!"

लड़के बादशाह ने उनमें से एक को आने का हुक्म दिया और उससे धीमी आवाज में पूछा—"क्या तुमने दलाल की बीबी को देखा था?"

गवाह ने जवाब दिया—"जी, आलीजाह !"

"वह देखने में कैसी थी ? उसकी कुछ पहचान बता सकते हो ?"

"जी, आलीजाह !" कहकर वह परेशानी में पड़ गया पर किसी तरह बोला—"उसके माथे पर एक तिल है। उसका एक दाँत टूटा हुआ है। उसका गोरा रंग है। वह लम्बी और दुबली है।"

लड़के बादशाह ने तब दूसरा सवाल किया—"क़ाज़ी का घर छोड़कर वह किस वक़्त भागी थी ?"

"सुबह के वक़्त आलीजाह !" गवाह ने जवाब दिया।

"अच्छा तुम यहीं खड़े रहो।" लड़के बादशाह ने उसे हुक्म दिया और फिर दूसरे गवाह को पेश करने का हुक्म दिया।

दूसरा गवाह आया और उससे भी लड़के बादशाह ने पूछा—"तुमने दलाल की बीबी देखी थी ?"

उसने जवाब दिया—"हाँ-हाँ, शहंशाह ! वह क़द की ठिगनी थी और पतली-पतली। उसके गाल गोरे-गोरे और उनपर सुर्ख़ी छाई हुई थी। ओंठों के पास एक तिल था। और वह दोपहर के वक़्त क़ाज़ी का घर छोड़कर भागी थी !"

लड़के बादशाह ने इसे भी वहीं खड़े रहने का हुक्म दिया। इसके बाद तीसरा गवाह पेश किया। उसने जो हाल दलाल की बीबी का बयान किया, वह पहले दोनों गवाहों के बयान से बिलकुल नहीं मिलता था। इसी तरह चौथे और बाक़ी सब गवाहों का बयान भी एक-दूसरे से नहीं मिलता था।

लड़के बादशाह की बग़ल में बैठे हुए सुल्तान महमूद सुबुक्तगीन सब कार्यवाही देख-सुन रहे थे।

जब गवाहियाँ ख़तम हुईं, तब लड़के बादशाह ने गवाहों से कहा—"काफ़िरो ! झूठी गवाही देते तुम्हें शर्म नहीं आती।"

फिर सिपाहियों को हुक्म दिया—"जाओ, इन्हें कड़ी से कड़ी सज़ा देकर इनसे सच बात पूछो !"

"कड़ी सज़ा" सुनते ही सब गवाह काँपने लगे और उन्होंने वहीं ज़मीन पर अपना माथा टेककर गिड़गिड़ाते हुए कहा—"आलीजाह ! ख़ुदा के लिए रहम कीजिए ! हमारी जान बख़्शिए ! हम ग़रीब इन्सान हैं। हमें इस क़ाज़ी ने रुपया देकर झूठी गवाही देने के लिए मजबूर किया और जो कुछ हमने कहा, वह सब इसी क़ाज़ी ने सिखाया था।"

तब लड़के बादशाह ने क़ाज़ी से कहा—"तुम्हें कुछ और सफ़ाई देनी है !"

क़ाज़ी अब थरथर काँपने लगा था। उसने टूटी हुई आवाज़ में कहा—"आलीजाह ! मैंने जो कुछ कहा, सच कहा !"

लड़के बादशाह ने कहा—"हमारे क़ाज़ी साहब काफ़ी बहादुर आदमी हैं। सब तरह की तकलीफ़ें बरदाश्त कर सकते हैं। सिपाहियो, ज़रा आपकी ख़ातिर करो !"

जब क़ाज़ी ने यह सुना, तो सज़ा के डर से घबरा गये और सब हाल सच-सच कह दिया।

सच बात सुनते ही लड़के बादशाह ने इन्साफ़ की गद्दी को सच के ओंठों से चूमकर सुल्तान महमूद सुबुक्तगीन से कहा—"आलीजाह ! लीजिए सच मालूम हो गया। अब बाक़ी फ़ैसला आप कीजिए !"

सुल्तान ने क़ाज़ी का सिर धड़ से अलग करने के लिए फ़ौरन जल्लाद को हुक्म दिया और उसकी सब जायदाद और माल दलाल की बीबी को दिलवा दिया।

और उस लड़के की अक्लमंदी और दूरंदेशी से सुल्तान सुबुक्तगीन इस क़दर खुश हुए कि उस दिन से उन्होंने फिर अपने पास ही महल में रक्खा और उसकी पढ़ाई-लिखाई और सब तरह की तालीम का इन्तज़ाम कर दिया।

बड़े होने पर वही लड़का सुल्तान महमूद सुबुक्तगीन की सल्तनत के और निजी सभी मामलों में दाहिना हाथ बन गया।

बाँदी ने बरबत फिर उठाया, पहले से ज्यादा अन्दाज के साथ—

"हूँ अजब हैरान!
तेरे हुस्न जैसा,
न वह आफ़ताब,
और न वह चाँद!
न सितारों जड़ा,
पूरा आसमान!
हूँ अजब हैरान!"

इसके बाद वह हमारे पास मग़रिब की नमाज के वक़्त तक बैठा बातचीत करता रहा। नमाज पढ़ने के बाद उसने मुझसे पूछा—"हमारे इस ग़रीब मुल्क में आपने कैसे तकलीफ़ की?"

"मैं इस बाँदी को बेचने के लिए चला आया", मैंने जवाब दिया।

"हूँ! तो इसकी क़ीमत क्या है?" उसने पूछा। मैंने जवाब दिया—"अजी जनाब क़ीमत क्या, बस यह चाहता हूँ कि इतनी रक़म मिल जाय जिससे मेरा क़र्ज़ा चुक जाये और अच्छी तरह खाने-पीने को मुझे मिल जाये!"

"यानी तीस हजार?" उसने पूछा।

"हाँ, जैसी ख़ुदा की मर्ज़ी, लेकिन इससे ज्यादा," मैंने जवाब दिया।

"तब चालीस हजार काफ़ी होंगे?"

"हाँ, इससे मेरा क़र्ज़ा उतर जायगा, लेकिन मेरा हाथ तो बिलकुल खाली ही रहेगा", मैंने कहा।

तब उसने कुछ सोचकर जवाब दिया—"ख़ैर, मैं इसे पचास हजार में ख़रीद लूँगा और इसके सिवा मैं आपको एक बढ़िया पोशाक और

सफ़र-ख़र्च दूँगा और इसके अलावा अपनी तिजारत में जिन्दगी भर के लिए हिस्सेदार बना लूँगा।"

"तो फिर सौदा तय!" मैंने चीखकर कहा—"इसे मैं आपके हाथ बेचता हूँ।"

इसपर उसने कहा—"अगर मैं इसे अभी अपने साथ ले जाऊँ और रात भर अपने पास रखकर सुबह वापस पहुँचा देने का वायदा करूँ, तो क्या आप मुझ पर यक़ीन करेंगे? या आप यह पसन्द करेंगे कि कल सुबह मेरे पास आने तक आप इसे अपनी ही ख़िदमत में रात भर रक्खेंगे?"

"नहीं, नहीं—मैं आप पर पूरा यक़ीन करता हूँ। आप इसे शौक़ से अपने साथ ले जाइए और मैं ख़ुदा से दुआ करता हूँ कि आपके साथ रात भर रहकर ख़ुशी हासिल करे।" मैंने जवाब दिया। लेकिन नशे में मैं चूर था और कुछ होश मुझे था नहीं।

तब उसने अपने साथ के एक नौकर से कहा—"इसे घोड़े पर बिठाल दो और तुम इसके पीछे बैठकर इसे ले चलो।"

इसके बाद उसने भी मुझसे बिदा ली और घोड़े पर चढ़कर चला गया।

उसने पीठ फेरी ही थी कि मुझे अपनी ग़लती का ख़याल आया। मुझे अफ़सोस होने लगा कि हाय! मैंने यह क्या किया? मैंने अपनी ऐसी क़ीमती बाँदी उस शख़्स के हवाले कर दी जिसका मैं नाम-पता कुछ नहीं जानता। मान लो कि मैं उसे पहचान भी लूँ, पर पहचानने का मौक़ा तो तभी आयेगा जब वह कहीं मिलेगा।

अपनी इसी ग़लती का अफ़सोस करता हुआ मैं सुबह मग़रिब की नमाज़ तक बैठा रहा। मेरे बाक़ी साथी दमिश्क चले गये, लेकिन मैं रह गया, क्योंकि मेरी समझ में ही नहीं आता था कि आख़िर मैं क्या करूँ। सूरज आसमान में काफ़ी चढ़ आया और धूप बेहद तेज़ हो गई। तब मैं वहाँ से उठकर एक ऊँची दीवार के साये में बैठ गया।

यों ही मन मारे मैं वहाँ बैठा हुआ था और दिन बीतने आया था कि मैंने दूर पर उस नौजवान के उन्हीं दोनों नौकरों को घोड़े पर आते देखा।

सच जानिए कि ज़िन्दगी में उतनी ख़ुशी पहले कभी मुझे नहीं हुई थी जितनी कि इस वक़्त इन दोनों नौकरों को देखकर हुई।

मेरे नज़दीक आकर वे घोड़े से उतर पड़े, और उनमें से एक ने मुझसे पूछा—"मालिक ! माफ़ फ़रमाइए—मुझे आने में देर हो गई।"

लेकिन मैं चुप रहा और अपनी परेशानी के बारे में उनसे एक बात भी नहीं कही।

तब उसने पूछा—"आपने उस नौजवान को पहचाना ?"

मैंने जवाब दिया—"नहीं।"

"वे शाहज़ादे थे, इस सल्तनत के मालिक।" उसने जवाब दिया—"उनका नाम अलवालिद इब्न हाशिम है।"

यह सुनकर मैं चुप रहा।

मुझे चुप देखकर उसने कहा—"मेहरबानी करके उठिए और महल चलने की तैयारी कीजिए।"

और सुनिए—वे अपने साथ मेरे लिए भी एक घोड़ा लेते आये थे,

जिस पर सवार होकर मैं उनके साथ चल दिया और शाहज़ादे के महल पहुँच गया।

फाटक में घुसते ही मेरी बाँदी जैसे कूदकर मेरे पास आगई और सलाम किया। तब मैंने उससे पूछा—"रात कैसी कटी?"

उसने जवाब दिया—"उन्होंने मुझे एक छोटी कोठरी में लाकर रख दिया और खाने-पीने का इन्तज़ाम कर दिया था।"

तब उसके साथ वहीं कुछ देर तक बैठकर मैं बातचीत करता रहा। इतने में शाहज़ादे का एक नौकर आकर कहने लगा—"चलिए!"

उठकर मैं उसके साथ चल दिया। वह मुझे शाहज़ादे के पास ले गया।

वहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि वही नौजवान, जिसने कल मेरी ग़रीब मेहमानदारी मंज़ूर की थी और मेरे पास बैठकर बातचीत की थी, इस वक़्त अपनी शाही गद्दी पर बैठा हुआ है।

मैंने शाही आदाब बजाया।

तब उसने शाही ढंग से पूछा—"आप कौन हैं?"

"यूनिस गवैया!" मैंने जवाब दिया।

"ख़ुदा ही जानता है मैं कब से आपसे मिलने को उतावला हूँ। मैंने आपकी बहुत तारीफ़ सुन रक्खी है। और हाँ—आपने रात कैसे बिताई?"

"अल्लाह आपको ख़ुश रखे! मेरी रात ख़ूब चैन से कटी", मैंने जवाब दिया।

"लेकिन आपने अपनी कल की ग़लती के लिए ज़रूर अफसोस किया होगा और कहा होगा कि मैंने अपनी बाँदी एक ऐसे शख़्स के हवाले

कर दी जिसका नाम तक मैं नहीं जानता और उसके पते से भी क़तई अनजान हूँ।"

"ख़ुदा ऐसा न करे।" मैंने ज़ोर से कहा—"कि मुझे अपना काम ग़लत समझ पड़े और अफ़सोस करना पड़े! ऐ शाहज़ादे! अगर मैं इस अदना बाँदी को आपकी ख़िदमत में यूँ भी पेश करता तो भी मेरी यह ख़िदमत एक निहायत ग़रीब, अदना और नाचीज़ क़िस्म का तोहफ़ा होती!"

यह सुनकर उसने जवाब दिया—"लेकिन फिर भी मेरा अल्लाह ही जानता है कि लौटकर मैंने आपके पास से इस बाँदी को यूँ ही ले आने के लिए ख़ुद को कितनी लानत-मलामत दी और अफ़सोस किया। मैंने अपने दिल से कहा—"देख, एक यह परदेशी है, जो मुझे जानता भी नहीं, और जिसके पास ख़ुद मैं ही अचानक बिना बुलाये पहुँच गया और इस लड़की को ले आने की अपनी उतावली में इस बेचारे को ऐसी ग़लती कर बैठने के लिए मजबूर किया।"—ख़ैर, अच्छा अब आपको याद है कलवाली बातचीत?"

"हाँ, हुज़ूर।" मैंने जवाब दिया।

"आपने यह बाँदी मेरे हाथ पचास हज़ार दिरम में बेच दी है।"

"जी हुज़ूर, ठीक है!"

तब शाहज़ादे ने एक ग़ुलाम को आवाज़ देकर हुक्म किया—"जा! ख़ज़ाने में से पचास हज़ार दिरम ले आ!"

जब ग़ुलाम यह रक़म लेकर अपने मालिक के पास लौट आया, तब उसने फिर हुक्म दिया—"जा, एक हज़ार दीनार और ले आ।"

जब वह एक हज़ार दीनार भी ले आया, तब शाहज़ादे ने फिर हुक्म दिया—"जा, पाँच सौ दीनार और भी ले आ।"

गुलाम ने पाँच सौ दीनार और लाकर शाहज़ादे को दिये, तब शाहज़ादे ने मुझसे कहा—

"यह पचास हज़ार दिरम बाँदी की क़ीमत हैं। इन्हें सँभाल लीजिए। यह एक हज़ार दीनार आपने जो सबक़ हमें आज सिखाया है, उसके इनाम में मंज़ूर कीजिए और बाकी यह पाँच सौ दीनार आपके सफ़र-ख़र्च और घर के लिए कुछ सामान खरीदने के लिए है। कहिए आप ख़ुश हैं?"

मैंने जवाब दिया—"हुज़ूर, अल्लाह ही जानता है कि मुझे कितनी ख़ुशी है", और यह कहकर मैंने शाहज़ादे का हाथ चूम लिया और तब कहा—"आपने न सिर्फ़ मेरा हाथ भर दिया है, बल्कि मन भी।"

यह सुनते ही जैसे एकाएक शाहज़ादे ने चीख़कर कहा—"या ख़ुदा! मैं बाँदी से तो तब से मिला ही नहीं हूँ। उसका गाना सुनने की मेरी बड़ी तबीअत है। उसे जल्दी पेश करो!"

शाहज़ादे का हुक्म पाकर बाँदी फ़ौरन आई और बैठ गई।

जब वह बैठ गई, तब शाहज़ादे ने कहा—"गाओ न!"

और बाँदी ने गाना शुरू किया।

गाना सुनकर शाहज़ादे ने ख़ूब तारीफ़ की और उसे इतनी बढ़िया तालीम देने के लिए मेरा शुक्रिया अदा किया।

इसके बाद उसने अपने एक गुलाम को हुक्म दिया—"जा! इनके लिए एक सवारी ला, जिस पर इनके बैठने के लिए ज़ीन कसी हो और एक ख़च्चर भी अलग से इनके सामान के लिए ला!"

और तब मेरी तरफ़ मुड़कर कहा—"जनाब यूनिस साहब! जिस वक़्त भी आपको यह खबर मिले कि मैं इस सल्तनत की गद्दी पर बैठ गया हूँ, उसी वक़्त आप मेरे पास तशरीफ़ ले आइए और मैं खुदा की क़सम खाकर आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि मैं आपकी मुट्ठियाँ भर दूँगा और आपको इज़्ज़त दूँगा और जब तक ज़िन्दा रहूँगा, तब तक आप मेरे दरबार के शाही गवैये रहेंगे।"

मैं अपने घर लौट आया। और जब कुछ बरस बाद शाहज़ादे अल-वालिद को सल्तनत का तख़्त मिला, तब मैं उनके पास पहुँचा और मैं क़सम खाकर कहता हूँ कि अपने वायदे के मुताबिक उन्होंने मुझे दरबार में शाही गवैया मुक़र्रर कर दिया और बड़ी इज़्ज़त बख्शी। उनकी ख़िदमत में रहकर मैंने अपनी ज़िन्दगी बड़े अमन-चैन से बिताई और खूब माल और जायदाद पैदा कर ली, जो इतनी काफ़ी है कि मेरे मरने के बाद मेरी कई पुश्तों को रोटी-कपड़ा अच्छी तरह देती रहेगी। जब वे एक लड़ाई में मारे गये, तब मैं वहाँ से चला आया। खुदा जन्नत में उनपर करम करे मेरी यही दुआ है—आमीन!

अवन्तसुन्दरी

—भारतवर्ष

वसन्त-ऋतु आगई थी। राजवाहन अभी तक अवन्ती में ही प्रवास कर रहे थे। वसन्तोत्सव समीप आ रहा था। नवपल्लवों, पुष्पों तथा मंजरियों के सुरभिमय भार से नत वृक्ष, लतायें, द्रुम, गुल्मादि मलय समीरण के मादक स्पर्श से झूम-झूम पड़ते थे। सरोवरों में कमल खिल रहे थे और हंस तैर रहे थे। वन-उपवन में पक्षियों का मृदुल कलरव गान और भ्रमरों का मधुर गुंजन व्याप्त था। निरभ्र निलय को नीलम निर्मलता का वितान छाया हुआ था। वासन्ती मादकता प्रत्येक वस्तु का प्राण बनकर नृत्य कर उठी थी और जन कामदेव के पूजनोत्सव के लिए प्रस्तुत हो रहे थे।

वसन्तोत्सव के दिन नर-नारी अपनी-अपनी सुन्दर वेश-भूषाओं से शृंगार करके उपवनों में रमण कर रहे थे।

उपवन में एक बड़े वृक्ष की छाया में कामदेव की मूर्ति के पूजन में लीन राजकुमारी अवन्तसुन्दरी अपनी सखी बालचन्द्रिका के साथ आसीन थी। वहीं पर राजकुमार भी अपने संगी पुष्पोद्भव के साथ आ पहुँचा। राजकुमारी के अनिंद्य सौन्दर्य की ख्याति सुनकर वह अवन्ती आया था और उसके दर्शन करके कृतार्थ होना चाहता था। इस प्रकार वहां पहुँचकर उसने राजकुमारी के समीप जाने के लिए प्रयत्न करने प्रारम्भ किये। बालचन्द्रिका राजकुमार के हृदय की आकांक्षा समझ

गई और उसने इंगित से अपने समीप आने को आमंत्रित किया। राज कुमार हर्षित मन राजकुमारी अवन्तसुन्दरी के पास आकर उपस्थित हो गया।

अवन्तसुन्दरी की अनुपम सुन्दरता को देखकर वह मुग्ध हो गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे स्वयं कामदेव ने ही विश्व के समस्त सौन्दर्य-उपकरणों से उसकी रचना की हो और उसे सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा ही बना दिया हो।

राजकुमारी की ऐसी असीम मनोरम सुन्दरता के प्रति राजकुमार का हृदय प्रतिपल अधिकाधिक आकर्षित होने लगा और फलस्वरूप वह उससे प्रेम करने लगा।

राजकुमारी अवन्तसुन्दरी ने भी जब सौन्दर्य-भार से नत अपने रतनारे मादक नयन उठाकर राजकुमार की ओर लजीली दृष्टि डाली, तब उसे भी ऐसा प्रतीत हुआ मानो कामदेव ही साक्षात् उसके सम्मुख खड़े उसके पूजन से प्रसन्न होकर दर्शन दे रहे हों और तत्काल उसका हृदय भी राजकुमार के प्रेम-बाण से बिंध गया और उसका रोम-प्रतिरोम सिहर उठा और मलय समीर के सरस स्पर्श से सिहरती हुई लवंगलता की भाँति ही यौवनोन्माद के मधुर भार से व्यथित कामातुर राजकुमारी राजकुमार के दृष्टि-स्पर्श से ही प्रकम्पित हो उठी।

तदोपरान्त राजकुमार ने मन में कहा—"इतनी असीम सुन्दरता की सृष्टि विधाता ने संयोगवश ही कर दी होगी और विश्व में यह सर्वथा अतुलनीय है।"

राजकुमारी अवन्तसुन्दरी कुमारी-सुलभ लज्जावश प्रकट तो राज-कुमार का सौन्दर्य निहार नहीं सकती थी। लाज से उसके कोमल कपोल

खिल उठे थे। अपनी सखियों में ही लुकी-छिपी वह दृष्टि चुरा-चुराकर कनखियों से देखती और अपने मन से पूछती—"साक्षात् सौन्दर्य के समान सुन्दर यह पुरुष कौन है ? इनका निवास-स्थान कहाँ है ? ओह ! वह नारी भी कितनी सौभाग्यशालिनी होगी जो ऐसे सौन्दर्य का उपभोग करती होगी ! ऐसे सुन्दर पुत्र की जननी भी धन्य है ! मेरा हृदय भी तो नहीं मानता—क्या करूँ मैं ? कैसे धैर्य धरूँ ?"

बालचन्द्रिका पलक मारते-मारते राजकुमार और राजकुमारी के हृदयगत परस्पर मनोभावों को ताड़ गई, किन्तु उसने ऐसे सार्वजनिक स्थल पर सभी सखियों के सम्मुख राजकुमार का सत्य परिचय अपनी सखी को बतलाना उचित नहीं समझा और केवल इतना ही कहा—"ये एक अति विद्वान् और कुशल ब्राह्मण युवक हैं और मेरे पति के अन्यतम मित्र हैं और तुम्हारी कृपा के योग्य है। तुम इनका उचित सत्कार करो।"

यह जानकर राजकुमारी का हृदय हर्ष से नृत्य कर उठा, पर उसने अपनी प्रसन्नता को प्रच्छन्न रखकर राजकुमार से बैठने की प्रार्थना की। और जब वह उसके पार्श्व में बैठ गया, तब राजकुमारी ने अपनी एक दासी द्वारा पुष्प, सुगन्धि और पान उसको भेंट किये !

प्रेम से विभोर राजवाहन के मन ने कहा—"मेरे इस प्रकार अनायास ही इस राजकुमारी की ओर आकर्षित हो जाने का कोई न कोई कारण अवश्यमेव होना चाहिए ! पूर्वजन्म में यह अवश्य ही मेरी प्रिय पत्नी रही होगी और अब तक कदाचित् किसी अभिशापवश हम लोग पृथक् थे, किन्तु आज वह अभिशाप दूर हो गया प्रतीत होता है और इसी कारण हम लोगों का पुनर्मिलन हो रहा है। और यदि यही बात है, तब

तो इसके हृदय में भी मेरे लिए प्रेम उमड़ा होगा फिर भी मैं इसे अपने प्रेम के वशीभूत करने का प्रयत्न करूँगा।"

जब राजकुमार इसी समस्या को सुलझाने में सुध खोया बैठा था, तभी एक हंस राजकुमारी के समीप आया, जैसे वह उसके कोमल करों-द्वारा स्नेह-स्पर्श चाहता हो। अवन्तसुन्दरी ने चंचलतावश बालचन्द्रिका से उसे पकड़ लेने को कहा।

इसी अवसर पर राजकुमार के मन में एक विचार उठा। वह राजकुमारी से बोला—"यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं आपको एक कहानी सुनाऊँ?"

राजकुमारी राजवाहन का मधुर स्वर सुनकर सिहर उठी और लजा गई। उसने केवल धीरे से सिर हिलाकर अपनी इच्छा प्रकट की।

राजकुमार ने कहानी सुनानी प्रारम्भ की—"प्राचीन काल में संबल नामक एक राजा था। एक दिन उद्यान में अपनी प्रियतमा पत्नी के साथ रमण करते-करते उसने झील के तट पर एक हंस को निद्रावस्था में देखा। उसे पकड़कर उसकी टाँगें बाँध दीं और फिर उसे वहीं तट पर रखते हुए अपनी प्रिया से कहा—"यह हंस मुनि की भाँति ही मौन और शान्त बैठा रहता है, अब देखो यह कैसा भागता है।" हंस लँगड़ा-लँगड़ाकर चलने लगा और राजा हँसने लगा। एकाएक हंस मनुष्य की बोली में कहने लगा—"हंस की योनि में मैं एक पवित्र ब्राह्मण हूँ, और मैं यह शान्तचित्त मौन बैठा अपने ध्यान में मग्न था कि तूने विघ्न डाल दिया और अकारण ही मेरे साथ दुर्व्यवहार किया। अतः मैं तुझे शाप देता हूँ कि तू अपनी प्रिया के वियोग की कठोर वेदना से व्यथित हो!"

"ब्राह्मण का शाप सुनकर राजा का हृदय चिन्तित और व्यथित

हो उठा। तत्काल ही उसने साष्टांग दण्डवत् करके क्षमा-याचना की, 'हे मुनि ! अज्ञानतावश किये गये मेरे इस भयानक अपराध को क्षमा कीजिए।"

"राजा की करुण क्षमा-प्रार्थना सुनकर मुनि का क्रोध शांत हो गया और वे बोले—"वत्स ! मैं शाप लौटा नहीं सकता। जो कह दिया, सो कह दिया और इनका प्रभाव भी अवश्यमेव होगा, किन्तु मैं यह अवश्य कर सकता हूँ कि यह इस जन्म में प्रभाव न डाले, परन्तु अगले जन्म में जब तेरा विवाह इसी नारी के साथ होगा, तब दो मास तक तुझे इसके वियोग का दुख सहना होगा—बस ! और तत्पश्चात् तू इसके साथ आजीवन सुख-भोग करता रहेगा और मैं तुम दोनों को यह शक्ति दे दूँगा कि तुम लोग मिलते ही परस्पर एक दूसरे को तुरंत ही पहचान लो !"

कहानी समाप्त करते हुए उपसंहार के रूप में राजवाहन ने अवन्त-सुन्दरी से कहा—"इसलिए राजकुमारी, मैं आपसे सविनय अनुरोध करता हूँ कि आप इस हंस को न पकड़िए।"

कहानी सुनकर राजकुमारी को उसके सत्य होने में कोई संदेह नहीं रह गया और जैसी भावनाएं उसके हृदय में उठ रही थीं, उनसे उसे यह भी विश्वास हो गया कि यह कहानी मेरे ही पूर्व-जीवन की है, जो अब मुझे स्मरण हो रही है और इस पुरुष के प्रति जो मेरा हृदय आप ही आकर्षित होकर प्रेम-बन्धन में पड़ गया है, सो इसका कारण यही है कि ये पूर्व-जन्म में मेरे प्रियतम थे।"

मंद-मधुर मुस्कराती हुई राजकुमारी ने कहा—"मेरा तो अनुमान यह है कि राजा संबल ने उस हंस को जान-बूझकर इसी लिए बाँधा था

जिससे वह अपनी प्रिया को पुनर्जीवन में पहचानकर प्राप्त कर सके। यदि ऐसा ही है, तब तो राजा अत्यंत बुद्धिमान् और चतुर था।"

बस, इसी क्षण से फिर राजकुमार और राजकुमारी अपने परस्पर प्रेम को जान गये और प्रेमानंद से विभोर मौन बैठे रहे।

भूतपूर्व राजा मानसार की रानी ही अवन्तसुन्दरी की माता थी। कुछ काल पश्चात् बालचन्द्रिका ने उन्हें उसी स्थल की ओर, जहाँ सब बैठे थे, आते देखा और तुरंत ही राजकुमार और उसके साथी को पेड़ों के पीछे झाड़ियों में छिप जाने का संकेत किया।

रानी थोड़ी देर तक अपनी पुत्री के पास बैठी रही और बातचीत करती रहीं। तत्पश्चात् जब वे उठकर चलने लगीं, तो अवन्तसुन्दरी भी उनके साथ-साथ चल दी।

किन्तु जाने से पहले अवन्तसुन्दरी मुड़ी और हंस को सम्बोधित करके अपने प्रेमी से बोली,—"हे हंस, यद्यपि तुम अभी-अभी मेरे पार्श्व में आगये थे, पर मैं अब और अधिक समय तक तुम्हारे पास बैठ नहीं सकूँगी। माता जी के साथ मुझे जाना ही पड़ेगा। मुझे भूल मत जाना और न यही विचार करना कि मैं तुम्हारी उपेक्षा कर रही हूँ, सच में मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ!"

तत्पश्चात् वह व्याकुल मन से धीरे-धीरे अपनी माता जी के साथ चलने लगी, किन्तु निरन्तर बड़ी आकांक्षा और प्रेम-भरी दृष्टि से अपने प्रेमी की ओर देखती जाती थी।

× × ×

जब राजकुमारी अवन्तसुन्दरी महल में लौट आई तब उसने बालचन्द्रिका से राजवाहन के विषय में फिर पूछा और उत्तर में बालचन्द्रिका

ने उसे राजकुमार का सच्चा हाल बतला दिया। अपने प्रियतम राजकुमार के गुण जानकर अवन्तसुन्दरी उसके प्रेम में और अधिक निमग्न हो गई और क्योंकि उसके दर्शन मिलने की फिर कोई आशा नहीं थी, इसलिए वह निराशा में प्रतिपल घुलने लगी। अपनी अनिवार्य दिनचर्या की ओर से भी वह उदासीन हो गई और बस खोई-खोई-सी प्रियतम के ध्यान में ही डूबी रहती। उसकी भूख-प्यास भी मारी गई और फलस्वरूप उसे ज्वर आने लगा और वह शय्या से उठने के योग्य भी नहीं रही।

उसकी दासियों ने सभी प्रकार से अनेक उपचार राजकुमारी अवन्तसुन्दरी का ताप कम करने के लिए किये, किन्तु एक भी सफल नहीं हुआ; और वे भी दुखी रहने लगीं। तब राजकुमारी ने बालचन्द्रिका से कहा—"सखी री! तुम्हारे उपचार करने के सब प्रयत्न निष्फल होंगे, क्योंकि मैं ज्वर के ताप से नहीं, प्रिय-विरह के ताप से जली जाती हूँ। लोग कहते हैं कि कामदेव के पाँच बाण हैं, किन्तु मुझे तो उसके अनगिनती बाण बेध रहे हैं और असहनीय वेदना दे रहे हैं। मलय-समीर शीतल कही जाती है, किन्तु मेरे शरीर में तो वह अग्नि की लपटों की भाँति लगती है और अब तो यह मोतियों का हार भी मुझे साँप की तरह काटता लगता है! मेरे प्रियतम राजकुमार के अतिरिक्त और कोई मेरा रोग दूर नहीं कर सकता, पर उनसे मिलन कैसे हो?"

बालचंद्रिका चिन्तित हो गई। उसने सोचा—"कुछ न कुछ युक्ति तो करनी ही चाहिए और शीघ्र ही, नहीं तो राजकुमारी का यह मदनोन्माद इसके प्राण ही लेकर छोड़ेगा। जो भी हो, मैं स्वयं राजकुमार से मिलकर इन दोनों का मिलन कराऊँगी।"

यह निश्चय करके उसने अवन्तसुन्दरी से कहा—"सखी रानी, अपने प्रियतम को एक प्रेम की पाती तो लिख दो कम से कम ! इस समय लाज छोड़ो नहीं तो पछताओगी फिर। प्यासी की प्यासी रह जाओगी।"

राजकुमारी अवन्तसुन्दरी अपनी प्रिय सखी की यह आज्ञा सुनकर मन ही मन अति प्रसन्न हुई, पर ऊपर से लजा गई। किन्तु फिर बालचन्द्रिका के मृदुल आग्रह करने पर मान गई और उसे एक प्रेम-पत्र लिखकर दे दिया।

बालचन्द्रिका अपनी सखी का प्रेम-पत्र लेकर राजकुमार राजवाहन से मिलने जाने से पहले दासियों को आदेश दे गई कि उसकी अनुपस्थिति में वे राजकुमारी की परिचर्य्या बड़ी सावधानी और सतर्कता से करें।

बालचन्द्रिका अपने पति के पास गई और वहीं उसने राजवाहन को उपस्थित पाया। उसने देखा कि राजकुमार की दशा भी उसकी सखी की-सी है—वह भी अपनी प्रिया के विरह में जला जा रहा है और अकेला शय्या पर लेटा तड़प रहा है और अपने हृदय की व्यथा अपने मित्र को सुना रहा है।

बालचन्द्रिका को देखते ही राजकुमार अपनी शय्या पर से उछल पड़ा और कहने लगा—"ओह ! तुम आगई ! तुम्हें देखकर जान में जान आई ! राजकुमारी का शुभसंदेश लाई हो न ! अच्छा बैठकर मुझे मेरी प्रिया का सब समाचार शीघ्र सुना डालो !"

बालचन्द्रिका ने कहा—"राजकुमारी भी तुम्हारी तरह विरह-वेदना से अति व्याकुल और अधीर हो रही है और तुम्हें यह पत्री भेजी है," कहकर उसने पत्री राजकुमार के हाथ में दे दी।

राजकुमार ने तुरन्त ही आतुरतापूर्वक उसे खोला और पढ़ने लगा—

"प्रियतम मेरे !

फूल-से सुन्दर तुम्हारे मुख को देखकर मैं सदैव के लिए तुम्हारी हो गई हूँ। तुम्हें मैंने अपने हृदय-मंदिर में आसीन कर लिया है। तुम्हीं मे देवता हो—और ओ—कितने सुन्दर हो तुम ! तुम्हारा निर्मल सौन्दर्य सर्वथा अनुपम है मेरे देवता ! मैं तन-मन से प्रतिपल तुम्हारी पूजा करती हूँ—तुम्हें प्यार करती हूँ। मेरी सुधि न लोगे क्या ओ मेरे सर्वस्व ! तुम्हारा प्रणय-स्पर्श पाने के लिए मेरा रोम-रोम तरस रहा है—ओ—कितनी वेदना हो रही है—विदा प्रियतम मेरे—

तुम्हारी—

अवन्तिका !"

यह सब पढ़कर राजवाहन प्रेम के सुख में विभोर हो उठा, किन्तु शीघ्र ही उसकी मिलनाकांक्षा और भी तीव्र हो गई। उसने बालचन्द्रिका से कहा—"तुम्हारे यहाँ आने से जैसे मुर्झाये हुए पौदे को जल मिला। तुम मेरे अति प्रिय मित्र पुष्पोद्भव की पत्नी हो और साथ ही तुम मेरी प्रिया की भी अभिन्न सखी हो, इसलिए मैं खुलकर अपने मन की बात तुमसे कह सकता हूँ !—हाँ, तो अपनी सखी से कहना कि जब से तुम उन्हें वहाँ कुंज में छोड़कर चली आई थीं, तभी तुम उनका हृदय भी चुराती ले गई थीं और वे तुमसे मिलने के लिए तुमसे भी अधिक आतुर और व्याकुल हैं और तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए, यद्यपि तुम्हारी शय्या तक पहुँचने का मार्ग पुष्पों से बिछा हुआ नहीं है, फिर भी किसी न किसी प्रकार वे शीघ्र ही आकर तुम्हारी कामना पूरी करेंगे और

स्वयं भी सुखी और आनंदित होंगे !—यह समाचार देकर तुम शीघ्र ही लौटकर आओ, तब मैं तुम्हें बतलाऊँगा कि तुम्हें क्या करना होगा इस प्रयत्न को सफल बनाने में !"

राजकुमार का यह संदेश लेकर बालचन्द्रिका दौड़ी-दौड़ी अपनी सखी के पास पहुँची और उसे सब कह सुनाया। राजकुमारी अवन्त-सुन्दरी अपने प्रियतम से ऐसा मधुर आश्वासन पाकर अति प्रसन्न हुई। उसे कुछ धीरज बंधा और मिलन की मधुर आशा हुई।

किन्तु राजकुमार को कोई सान्त्वना नहीं मिली। वह और भी अधिक अधीर और व्याकुल हो उठा और मन बहलाने के लिए उस उद्यान में चला गया जहाँ एक कुंज में उसकी राजकुमारी अवन्तसुन्दरी से प्रथम परिचय हुआ था।

उस कुंज में पहुँचकर वह उसी स्थल पर जहाँ राजकुमारी बैठी थी, उदास मन बैठ गया। उस दिनवाले पुष्प आज भी वहाँ मुर्झाये पड़े थे—वही वृक्ष था, वही लतायें, वही वासंती वायु, किन्तु इस समय उसका मन प्रिया की स्मृति से दग्ध था और वह भूला-भूला-सा अनिमेष और अन्यमनस्क बैठा था। पुष्पोद्भव भी उसके साथ था।

कुछ समय बाद उन्होंने एक अनुचर के साथ एक सुसज्जित भव्य ब्राह्मण को अपनी ओर आते देखा।

राजकुमार राजवाहन के समीप आकर उस ब्राह्मण ने उन्हें प्रणाम किया। उत्तर में राजकुमार ने उसका अभिवादन करके पूछा—"आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"मेरा नाम विद्येश्वर है। मैं चौंसठ विद्याओं और कलाओं में पारंगत हूँ। देश-देश में पर्यटन करता हुआ

में बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के सम्मुख अपना कला-कौशल प्रदर्शित करता हूँ। अब मैं उज्जैन के राजा के सन्मुख अपनी अद्‌भुत कलाओं का प्रदर्शन करने आया हूँ", फिर वह किंचित् एक अर्थपूर्ण मुस्कान के साथ बोला, "किन्तु आप पीले क्यों पड़ रहे हैं ?"

ब्राह्मण का यह कथन सुनकर पुष्पोद्‌भव को यह विश्वास हो गया कि यह व्यक्ति निपुण है और इससे अपना काम सध सकता है; इसलिए उससे कहा—"आपको देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप बड़े उदार और सहृदय सज्जन हैं और आप हमारे मित्र हो सकते हैं, कारण कि आप जानते ही हैं कि कभी अति न्यून परिचय से ही तुरत घनिष्ट मित्रता हो जाती है। इसलिए अब मैं आपको अपने इन मित्र की चिन्ता का कारण बताऊँगा। ये एक राजकुमार हैं। कई दिवस पूर्व इसी स्थल पर इनकी भेंट उज्जैन के राजा की युवती कन्या राजकुमारी अवन्तसुन्दरी से हुई थी। तत्काल प्रथम दृष्टि में ही दोनों परस्पर प्रेम करने लगे और तब से मिलन न होने के कारण विरह-वेदना से व्याकुल हैं। जैसी दशा आप इनकी देख रहे हैं, वैसी ही दशा उज्जैन के राजमहल में राजकुमारी अवन्तिका की भी है। और मिलन असंभव प्रतीत होता है।"

विद्येश्वर ने एक बार राजकुमार राजवाहन की ओर फिर दृष्टि डाली, और तब मुस्करा कर बोला—"मेरे जैसे मित्र का साथ होने पर कुछ भी असंभव नहीं है। मैं अपने कला-कौशल-द्वारा ऐसा प्रबन्ध करूँगा कि ये अपनी प्रिया को उसके माता-पिता के उपस्थिति में ही पत्नी बना लें; किन्तु आपको मेरे आदेशों का पालन भली भाँति करना होगा और हमारी युक्ति की सूचना राजकुमारी के पास भी अवश्य पहुँच

जानी चाहिए जिससे वह भी अपने भाग का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न कर सके और हम असफल न होने पावें। तो यह काम उसकी किसी सखी से कराने का प्रबन्ध कर लीजिए!"

तब विद्येश्वर ने राजकुमार और पुष्पोद्भव को अपनी युक्ति समझा दी और चला गया।

घर लौटकर राजवाहन ने संध्या समय बालचंद्रिका को बुलवाया और उसे विद्येश्वर वाली सारी युक्ति बता दी और उसके लिए उचित आदेश भी दे दिये तथा पुनः एक बार अपनी प्रिया अवन्तिका को सान्त्वना देने और धीरज बँधाने के लिए अपना प्रेम-संदेश भेज दिया।

बालचंद्रिका के चले जाने के पश्चात् राजवाहन कल की प्रतीक्षा अति अधीर होकर करने लगा। रात्रि का एक-एक पल काटना उसके लिए दूभर हो उठा। अपनी सूनी शय्या पर अकेले लेटे-लेटे करवटें बदलता रहा और कभी-कभी आगत सुख की मधुर कल्पनाओं में विभोर होकर क्षण भर के लिए सब व्यथा भूल जाता, किन्तु फिर दूसरे ही क्षण आशंकायें आकर उसके स्वप्नों को भंग कर देतीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल विद्येश्वर अपने अभिनेता-गणों का एक दल लेकर उज्जैन के राजप्रसाद के प्रमुख तोरण पर जा पहुँचा और द्वारपाल से कहा, "महाराजाधिराज को सूचित करो कि वे सुविख्यात कलाकार उपस्थित हैं!"

राजा मानसार ने पहले से ही विद्येश्वर के कला-कौशल की प्रख्याति सुन रक्खी थी। इसलिए सूचना पाते ही उसने द्वारपाल को आज्ञा दी—"जाओ! उन्हें सम्मानपूर्वक मेरे पास ले आओ!"

विद्येश्वर ने राजा के सम्मुख पहुँचकर उचित राजसी अभिवादन किया, तत्पश्चात् उससे अपने कला-प्रदर्शन की अनुमति माँगी।

राजा ने सहर्ष अनुमति दे दी और खेल प्रारम्भ हुआ।

विविध वाद्य-योग बजने लगे। मोरपंखी के पंखे झलने लगे। गायकों ने श्रोतागणों का ध्यान बँटाने के लिए विभिन्न पक्षियों की विचित्र-विचित्र बोलियाँ बोलनी आरम्भ कर दीं। विद्येश्वर ने अपनी आँखें आधी मूँद लीं और कुछ समय तक बड़ी उद्विग्नता प्रदर्शित की, फिर अनायास ही अनेक विषधर सर्प उत्पन्न कर दिये जिन्हें निगलने के लिए उसने आकाश से गिद्ध भी उड़ा बुलाये!

तत्पश्चात् उसने नरसिंह भगवान्-द्वारा हिरण्यकश्यप की हत्या और भक्त प्रह्लाद की रक्षा का दृश्य उपस्थित कर दिया। दर्शक आश्चर्य-चकित रह गये।

तत्पश्चात् विद्येश्वर ने राजा मानसार से कहा—"महाराजाधिराज! मेरी यह इच्छा है कि मैं अपने इस खेल को किसी शुभ कार्य के प्रदर्शन से समाप्त करूँ, कारण कि यह राजदरबार है, आप प्रजापति हैं—हमें शुभ कार्य ही करने चाहिए, तभी सब सुखी होंगे, आपका प्रताप बढ़ेगा। इसलिए मैं एक राज-विवाह का प्रदर्शन करूँगा। मेरे दल की एक अभिनेत्री आपकी पुत्री का अभिनय करेगी, और एक अभिनेता ऐसे राजकुमार का अभिनय करेगा जो सर्वगुण सम्पन्न हो और आपकी कन्या के योग्य वर हो। किन्तु, क्योंकि यह सब एक काल्पनिक भावी घटना का प्रदर्शन है, इसलिए इसे देखने के लिए दिव्य दृष्टि होनी चाहिए, जो मैं अभी आपकी तथा दर्शकों की आँखों में एक अंजन लगाकर प्रदान किये देता हूँ।"

राजा विद्येश्वर के इस प्रस्ताव से सहमत हो गये और उसने सब की आँखों मे एक अंजन लगा दिया।

इसी समयांतर में राजकुमारी अवन्तसुन्दरी वधू के वेष में बाल-चन्द्रिका की सहायता से छिपकर आगई और विद्येश्वर के दल में सम्मिलित हो गई। राजकुमार राजवाहन वहाँ पहले से ही वर-वेष में सुसज्जित खड़ा था। तत्पश्चात् विवाहोत्सव होने लगा और अभिनय के बहाने विद्येश्वर ने ब्राह्मण होने के नाते विवाह-मंत्रों का भी उच्चारण किया और इस प्रकार विधिपूर्वक राजकुमार राजवाहन और राजकुमारी अवन्तसुन्दरी का विवाह राजा तथा रानी की उपस्थिति में ही सम्पन्न हो गया और उन्हें किंचित् मात्र भी संदेह नहीं हुआ कि वधू का अभिनय करनेवाली अभिनेत्री वास्तव में मेरी ही पुत्री है और न अन्य दर्शकों को ही कोई संदेह हुआ, अपितु वे विद्येश्वर की कला की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे—अभिनेत्री ने कैसा सुन्दर भेष बदला है कि बिलकुल राजकन्या अवन्तसुन्दरी-सी लगती है—जैसे वही रंगमंच पर आगई हो!"

अभिनय समाप्त होने पर महाराजा मानसार ने विद्येश्वर को अति उत्तम पुरस्कार दिया।

विद्येश्वर प्रसन्नचित्त राजदरबार से पुष्पोद्भव के घर लौट गया।

अभिनय की समाप्ति पर दरबार में लोगों के उठने से जो एक हल-चल एकाएक उत्पन्न हो गई थी, उसी में राजकुमारी के साथ राजवाहन उसके शयनकक्ष में जा पहुँचा, जहाँ बालचन्द्रिका ने उनके मधुर मिलन के लिए सब सामग्री सजा रक्खी थी—पुष्प-शय्या, सुगंधि अंग-राग

आदि—और इस भेद को नितांत गुप्त रखने के लिए दासियों को बहुत-सा पुरस्कार पहले से ही दे रक्खा था।

इस प्रकार निर्विघ्न राजकुमार राजवाहन ने अपनी प्रेयसी राजकुमारी अवन्तसुन्दरी के साथ 'सौभाग्य-रात्रि' मनाई। और मधुर-मिलन के आनंद का परस्पर उपभोग करके उन दोनों की समस्त वेदना और दुःख मिट गया। सामीप्य प्राप्त होने पर राजवाहन ने अपनी प्रिया को ऐसी अनेक बातों की शिक्षा दी, जिनसे वह अनजान थी और ऐसा सुयोग्य पति पाकर अवन्तसुन्दरी उससे और भी अधिक प्रेम करने लगी।

अस्मत

—तुर्किस्तान

एक दिन एक बादशाह अपने महल की छत पर चढ़ गया। वहाँ खड़े होकर उसने अपने चारों तरफ़ नजर जो दौड़ाई, तो अपने पड़ोस के ही एक घर में एक सुन्दरी देखी, जिसका मुखड़ा पूनो के चाँद और शुक्र सितारे जैसा ही सुन्दर था। बादशाह उसके रूप का शिकार हो गया।

नीचे उतरकर बादशाह ने अपनी बाँदियों से पूछा कि वह मकान किसका है।

उनमें से एक ने उत्तर दिया—"आलीजाह ! वह मकान आपके ही एक अदना ख़िदमतगार फ़ीरोज़ का है। और वह हूर-सी ख़ूबसूरत औरत उसकी बीबी है ! और सरकार आली उसकी जुबान भी निहायत शीरीं है, पर हुजूर की हस्ती के सामने उसकी क्या बिसात है भला !"

बादशाह फ़ीरोज की पत्नी के प्रेम में तड़पने लगा। उठते-बैठते उसे किसी तरह चैन नहीं पड़ता था। उसने आख़िर फ़ीरोज को शाही हुक्म भेजकर बुलवाया।

हुक्म पाकर फ़ीरोज दौड़ा चला आया और उसने झुककर शाही आदाब बजाया।

बादशाह ने उसे एक ख़त दिया और हुक्म दिया कि फ़लाँ शख्स पर शाही क़र्ज़ा है, उसे फ़ौरन वसूल करके लाओ। फ़ीरोज बादशाह

के हुक्म की तामील करने के लिए उस ख़त को लेकर घर लौटा और हथियार वग़ैरह जरूरी सामान लेकर सफ़र पर जाने के लिए तैयार हो गया। लेकिन तैयारी करने में वह ख़त घर ही भूल गया और चल दिया।

फ़ीरोज़ के पीठ फेरते ही उसकी पत्नी के प्रेम में दीवाना बादशाह फ़ौरन उसके घर जा पहुँचा और दरवाज़ा खटखटाया।

दरवाज़े पर आवाज़ सुनकर फ़ीरोज़ की पत्नी ने पूछा—"कौन है ?"

"दरवाज़ा खोल दो !" बादशाह ने अपनी शाही हुकूमत की आवाज़ में कहा और उस बेचारी ने उठकर चुपचाप दरवाज़ा खोल दिया।

बादशाह ने अन्दर घुसते ही कहा—"आज मैं आपका मेहमान हूँ," और यह कहकर वह वहीं दालान में एक पीढ़े पर बैठ गया।

वह बात करने में बहुत होशियार थी। निहायत तमीज़ और अदब से उसने अपनी शीरीं जुबान से पूछा—"आलीजाह ! कहिए कैसे इस अदना नाचीज़ लौंडी के ग़रीबख़ाने पर मेहरबानी की ? मेरी खुशक़िस्मत कि आपने इस लौंडी को अपनी इस ख़िदमत के लायक़ समझा !"

बादशाह ने जवाब दिया—"कुछ नहीं, मैं यूँ ही आपसे मिलने चला आया था।"

"आलीजाह ! अल्लाहताला रहम करे। मेरी सिर्फ़ अर्ज़ यह है कि इस अदना लौंडी पर इतनी मेहरबानी करने की कोई जरूरत तो थी नहीं", उसने कहा।

बादशा ने शाही रौब जमाया, "आप शायद मुझे पहचानने में ग़लती कर रही हैं—मैं आपके ख़ाविन्द का मालिक हूँ !"

वह परेशान होकर बोली—"या ख़ुदा रहम कर ! मैं आपकी ख़िदमत में हाज़िर हूँ !" यह कहने के बाद उसने एक शेर पढ़ा, जिसका

मतलब यह था—"जिस प्याले को आपका कुत्ता चाट चुका है, उसी को अब अपने ओंठों से लगाना आपकी शान के खिलाफ होगा !"

यह सुनकर बादशाह का सर शर्म से झुक गया। उसकी पलकें झुक गईं। उसपर जैसे घड़ों पानी पड़ गया। वह वहाँ से एकदम उठा और भागा और जल्दी में अपना एक जूता छोड़ गया।

जो खत वह घर पर ही भूल गया था, उसे लेने के लिए उधर से फ़ीरोज़ दौड़ा चला आ रहा था। रास्ते में ही बादशाह सलामत से उसकी मुठभेड़ हो गई। फिर भी वह अपने घर में अंदर गया और वह खत लेकर फ़ौरन ही अपने काम पर लौट गया। अपने घर में बादशाह साहब का एक जूता देखकर वह सब कुछ समझ गया कि क्यों उसे वह काम करने के लिए फ़ौरन ही घर से बाहर भेजा गया था। फिर भी वह चला गया और हुक्म बजाकर लौट आया।

लौटकर फ़ीरोज़ ने अपनी पत्नी को सौ गिन्नियाँ दीं और कहा—"कुछ दिनों के लिए तुम अपने भाई के पास रह आओ। इधर बादशाह सलामत ने हम लोगों के रहने के लिए एक बड़े और बढ़िया मकान का इंतजाम किया है, इसलिए मैं तुम्हारे पीछे इस मकान को खाली करके उसमें सामान ले जाऊँगा।"

अपने पति की बात में विश्वास करके वह बेचारी अपने पीहर चली गई। लेकिन जब बहुत दिनों तक फ़ीरोज़ न तो उसे बुलाने ही गया, और न अपनी कोई खबर ही उसके पास भेजी, तब वह चिंतित हो उठी और अपने भाई से कहकर उन्हें बुलवाया।

फ़ीरोज़ के आने पर उसके भाई ने पूछा—"मेहरबानी करके यह तो

बतलाइए कि आपने अपनी बीवी को इस तरह क्यों छोड़ दिया है, वरना हमें इस मामले को क़ाज़ी के सामने ले जाना पड़ेगा।"

फ़ीरोज़ ने जवाब दिया—"जो कुछ उसका हक़ था, वह सब मैं उसको दे चुका और अब वह मेरे किसी काम की नहीं रही है। आप शौक़ से काज़ी के यहाँ दरख्वास्त कर सकते हैं।"

दूसरे दिन वे क़ाज़ी के पास पहुँचे, जो बादशाह की बगल में ही बैठा हुआ था।

भाई ने फ़ीरोज़ के ऊपर इल्ज़ाम लगाते हुए कहा—"मौलाना! हमने इस शख्स को एक बाग़ दिया था जो चहारदीवारी से घिरा हुआ था और जिसकी ज़मीन निहायत बढ़िया जुती हुई और ज़रखेज़ थी; कहीं कोई ऐब उसमें नहीं था और मौसम आने पर उसमे फलों की पैदावार निहायत इफ़रात से हुई। इस शख्स ने उस पैदावार को खाकर खूब मौज की, और फिर बाग़ की चहारदीवारी तोड़-फोड़कर, और उसके कुयें को भी खत्म करके हमें धोखे से लौटा दिया।"

क़ाज़ी ने फ़ीरोज़ से कहा—"फ़ीरोज़! अपनी सफ़ाई में तुमको क्या कहना है?"

फ़ीरोज़ ने क़ाज़ी के सवाल का जवाब दिया—"हुज़ूर! मैंने जब बाग़ इनको वापस किया, तब वह उससे कहीं अच्छी हालत में था, जिसमें कि इन्होंने उसे मेरे हाथों में सौंपा था।"

"क्या तुमने उसे वापस पाया?" काज़ी ने भाई से पूछा।

भाई ने जवाब दिया—"जी हुज़ूर! लेकिन इनके उसे वापस करने की वजह क्या है? इन्होंने उसे बिना वजह क्यों लौटाया?"

फ़ीरोज़ ने जवाब दिया—"मैं अल्लाहताला की क़सम खाकर

कहता हूँ कि मैंने वह बाग़ इनको बिलकुल अपनी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ वापस किया है, क्योंकि एक बार उसमें मैंने शेर के पंजे के निशानात पाये और यह डर मेरे दिल में समा गया कि कहीं उस शाही जानवर का पंजा मेरा ही पंजा न दबोच ले, मैंने उसे उसी के लिए छोड़ने का इरादा कर लिया।"

पास बैठा हुआ बादशाह यह सब बातें सुन ही रहा था। फ़ीरोज़ की यह बात सुनकर उसने कहा—

"फ़ीरोज़! जाओ उस बाग़ में फिर लौट जाओ और चैन से उसके मज़े लूटो; क्योंकि यह सिर्फ़ अल्लाह ही जानता है कि हालाँकि शेर उसमें घुस तो गया था, लेकिन उसने वहाँ की एक पत्ती तक को हाथ नहीं लगाया और न उसका कोई फल ही चखा, और शर्म और ताज्जुब में भरकर वह उल्टे पैरों वहाँ से वापस लौट आया। मैंने पहले कभी अपनी जिन्दगी में ऐसा बाग़ नहीं देखा था जिसकी चहारदीवारी इतनी ऊँची हो, जिसके फाटक इतने मज़बूत हों, और जिसकी रविशें इतनी साफ़-सुथरी हों। जाओ, ख़ुदा तुम्हें उस बाग़ की ख़ूबसूरती और क़ीमत आँकने की अक्ल दे और तुम चैन से उसमें अपनी जिन्दगी बसर करो! आमीन!"

बस, इस प्रकार मुक़दमे का फ़ैसला हो गया और वे दोनों क़ाज़ी की अदालत से लौट आये। लेकिन मुक़दमे के असली वाक़यात क्या थे, यह किसी को नहीं मालूम पड़ा। अब फ़ीरोज़ बहुत ख़ुश था और घर लौटकर उसने अपनी पत्नी को वापस बुला लिया और उससे अब इतनी मुहब्बत और उसकी इतनी इज्ज़त करने लगा जितनी कि पहले कभी नहीं की थी।

एक पैसा

—काश्मीर

काश्मीर की मनोरम पर्वतीय घाटी में एक अत्यन्त सम्पन्न व्यापारी रहता था, जिसके एक महामूर्ख और हठी पुत्र था। यद्यपि उसके पिता ने उसके लिए अच्छे से अच्छे योग्य शिक्षक रक्खे, परन्तु उसने एक अक्षर नहीं सीखा। वह मूर्ख था, मूर्ख रहा। कोई भी कुछ उसकी भलाई की बात कहता, तो उसके अनुसार चलना तो दूर रहा, वह उसे सुनता भी नहीं था। वह चिकने घड़ा जैसा हो गया था और उसने कान में तेल डाल रक्खा था। उसकी अक्ल तो बिलकुल ठस थी ही, इसलिए दिन-रात आलस्य में पड़ा-पड़ा वक्त बरबाद करता था और किसी बात की परवाह उसे रत्ती भर भी नहीं थी। इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं कि धीरे-धीरे उसके पिता उससे घृणा और उसकी उपेक्षा करने लगे। किन्तु उसकी माता, जैसा स्वाभाविक ही था, सदैव यही कहा करती—"चलो, कुछ बात नहीं। सब सीख जायगा और सब ठीक हो जायगा।" और हमेशा ही उसकी तरफ़दारी लेती रहती थी।

जब लड़का विवाह-योग्य हुआ, तब माता ने पति से कहा—"इसके लिए कोई सुन्दर-सी अच्छी बहू खोज लाओ।"

परन्तु व्यापारी को अपने लड़के के नाम से ही शर्म लगती थी और बहुत दुख होता था, इसलिए वह न तो उसके लिए कुछ करना चाहता

था, और न उसके विषय में कुछ सुनना ही चाहता था। किन्तु मा तो बरसों से अपने बेटे की बहू को देखने के अरमान लिये बैठी थी, आस लगाये थी, वह भला कैसे मान जाती।

दूसरे लड़के का जन्म भर कुँआरा रहना भी तो कुल के लिए अपमान और कलंक की बात थी। धर्म और समाज और बिरादरी के विरुद्ध भी एक घटना होती। इसलिए मा ने तरह-तरह के बहाने बेटे की शादी के लिए पति को राजी करने में किये। उसने कहा—"मैंने कभी-कभी इसे बड़ी अक्लमंदी की बातें करते देखा है। और तुम जो यह कहो कि मेरा बेटा बिलकुल बेवकूफ है, सो तो बात नहीं है।"

इस तरह की बातें सुनकर व्यापारी की झुँझलाहट बढ़ती थी। वह कहता—"देखो जी मैं ऐसी बातें बहुत बार सुन चुका हूँ, लेकिन एक भी बार इनकी सचाई का सबूत नहीं पाया है। इनमें रत्ती भर भी सच है, सो मैं मानने के लिए तैयार नहीं। मा लोग तो अंधी हुआ करती हैं। ख़ैर, जिससे तुम फिर शिकायत न करो, मैं तुम्हारे लायक़ बेटे को अपनी लायक़ी दिखाने के लिए एक और मौक़ा दूँगा। जाओ, उसे अभी बुलाओ और तीन पैसे देकर कहो कि एक पैसे की कोई चीज अपने लिए मोल ले ले, दूसरे पैसे को नदी में फेंक दे और तीसरे पैसे से चार चीजें लाये—कोई खाने की चीज, कोई पीने की चीज, कोई गाय के खाने की चीज और बाग़ में बोने के लिए कोई बीज।"

मा ने ऐसा ही किया और उसका बेटा तीन पैसे लेकर बाजार पहुँचा।

सबसे पहले उसने एक पैसे की कोई खाने की चीज अपने लिए ली और खा ली। इसके बाद वह नदी किनारे आया और पानी में

दूसरा पैसा फेंकने ही वाला था कि रुक कर सोचने लगा—"इससे क्या फ़ायदा ? अगर मैं यह पैसा नदी में फेंक दूं, तो मेरे पास एक ही पैसा रह जायगा और उस एक पैसे में चार चीज़ें कैसे ख़रीद लूँगा ? और अगर मैं यह पैसा नहीं फेंकता हूँ, तो मा कहेगी कि मेरी आज्ञा नहीं मानी !"

इसी असमंजस में वह नदी के किनारे खड़ा था कि उधर से एक लोहार की लड़की निकली और लड़के को परेशान देखकर पूछने लगी—"क्या हो गया ?"

लड़के ने सब बात शुरू से बता दी और फिर कहा—"मा की ऐसी बात मानना बिलकुल बेवकूफ़ी है, क्योंकि आख़िर नदी में पैसा फेंक देने से क्या फ़ायदा ? लेकिन करूँ भी तो क्या ? मा का कहना भी मानना चाहिए। यही परेशानी है मुझे।"

यह सुनकर लोहार की लड़की ने कहा—"मैं तुम्हें सलाह देती हूँ—एक पैसे का एक तरबूज़ ख़रीद लाओ और दूसरा पैसा चुपचाप अपनी जेब में रख लो, नदी में मत फेंको। तरबूज़ में चारों चीज़ें मौजूद हैं—खाने के लिए गूदा, पीने के लिए पानी, गाय के खाने के लिए छुक्कल और बोने के लिए बीज। बस, इसलिए एक तरबूज़ ले जाकर अपनी मा को दो, और वे बहुत ख़ुश हो उठेंगी।"

लड़के को लोहार की लड़की ने जैसी सलाह दी, उसी के अनुसार काम किया।

जब व्यापारी की पत्नी ने अपने पुत्र की चतुरता देखी, तो उसकी ख़ुशी का कोई ठिकाना न रहा और उसने सोचा कि सचमुच मेरा बेटा

बड़ा बुद्धिमान् है। वह दौड़ी-दौड़ी पति के पास पहुँची और खुशी से फूलती हुई बोली—"देखो अब अपने बेटे की अक्लमंदी।"

तरबूज देखकर व्यापारी के आश्चर्य की सीमा न रही, किन्तु उसने उत्तर दिया—"मैं यह कभी नहीं मान सकता कि यह काम इसने ही अपने आप किया है। जरूर इसे किसी दूसरे ने सलाह दी है," कहकर वह लड़के की ओर मुड़ा और उससे पूछा, "तुमसे तरबूज खरीदने को किसने कहा?"

लड़के ने उत्तर दिया, "एक लोहार की लड़की ने।"

"देखो न", व्यापारी ने लड़के की मा से कहा, "अब मैंने कहा था न कि यह काम इसका हो ही नहीं सकता! खैर, जो भी हो इसकी शादी होने दो—और अगर तुम राजी हो और यह भी पसंद करे, तो इसी लोहार की लड़की से जिसने इसकी इतनी मदद की और जो इतनी चतुर है।"

"हाँ, हाँ", मा ने स्वीकृति देते हुए कहा, "बस यही सबसे अच्छा रहेगा।"

कुछ दिनों बाद व्यापारी लोहार के घर गया। वहाँ उसके घर पर बाहर ही वह लड़की उसे मिल गई। उसने उससे पूछा—"क्या तुम घर पर अकेली हो?"

"हाँ", उसने कहा।

"तुम्हारे माता-पिता कहा है?"

"मेरे पिता जी तो एक कौड़ी का लाल मोल लेने गये हैं और माता जी अपने वचन बेचने गई हैं", लड़की ने उत्तर दिया।

लड़की के इस उत्तर से वह बड़ी उलझन में पड़ गया, क्योंकि बात उसकी समझ में नहीं आई, और उसने फिर पूछा—"हाँ, ठीक है, तो तुमने क्या कहा ?"

"मैंने कहा कि पिता जी एक कौड़ी का लाल मोल लेने गये हैं—इसका मतलब यह कि वे दीपक के लिए तेल मोल लेने गये हैं—और मैंने कहा कि माता जी अपने वचन बेचने गई हैं—इसका मतलब यह कि वे किसी का विवाह ठहराने गई हैं।"

लड़की की चतुरता देखकर व्यापारी के मन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा, परन्तु उसने अपना भाव प्रकट नहीं होने दिया।

इतने में ही लोहार और उसकी पत्नी दोनों लौट आये। इतने धनी व्यापारी को अपने ग़रीब घर में देखकर वे आश्चर्य से चकित हो गये। अति सम्मानपूर्वक उनका अभिवादन करके बोले—"कहिए, आपने इस ग़रीब की कुटिया को पवित्र करने का कैसे कष्ट किया ?"

व्यापारी ने कहा—"मै अपने पुत्र का विवाह आपकी इस चतुर और सुयोग्य पुत्री से करना चाहता हूँ।"

लड़की के माता-पिता इस प्रस्ताव को सुनकर फूले नहीं समाये। उन्होंने तत्काल ही अपनी सहर्ष स्वीकृति देते हुए कहा—"यह हमारा सौभाग्य है और आपकी कृपा !"

और विवाह की तिथि भी निश्चित हो गई।

घर लौटकर व्यापारी ने अपनी पत्नी से कहा—"सब ठीक हो गया। उसके मा-बाप शादी के लिए राजी हैं और तिथि भी तय हो गई।"

यह खबर चारों तरफ बिजली की तरह फैल गई और लोग आपस

में बातचीत करने लगे कि व्यापारी बड़ा संगदिल है कि अपने बेटे की शादी एक ऐसे नीच घराने की बेटी से कर रहा है। कुछ चुगलखोरों ने तो यहाँ तक किया कि लड़के को बहकाने को चल दिये। उन्होंने उससे कहा कि तुम बेटी के बाप से जाकर कहो कि अगर आप ऐसी अनमेल शादी कर देंगे, तो मैं शादी हो जाने पर रोजाना आपकी बेटी को सात बार जूतों से पीटा करूँगा। चुगलखोरों ने सोचा कि जब लोहार यह सुनेगा तो डर जायगा और संबन्ध तोड़ देगा। और न भी तोड़ें, उन्होंने कहा, "अगर तो जब तुम अपनी बहू के साथ पहले ऐसा बर्ताव करोगे, तभी वह तुम्हारा कहना मानना सीखेगी और फिर आगे कभी तंग नहीं करेगी।"

बेवक़ूफ लड़के ने सोचा कि यह तो बड़ी अच्छी बात है और अपनी भावी पत्नी के पिता से जाकर यही सब कुछ कह दिया।

यह सुनकर लोहार बड़ा चिन्तित हुआ और उसने अपनी बेटी से सब हाल कहा और यह भी कि ऐसे आदमी से शादी न करना ही ठीक होगा—"इस तरह की शादी करने से तो जिन्दगी भर शादी न करना ही ज्यादा अच्छा होगा।"

लेकिन उसकी चतुर बेटी ने जवाब दिया—"नहीं, परेशान न हों आप। उन्हें किसी ने बहका दिया है जरूर, वरना वे ऐसा कभी नहीं कह सकते। दुनिया में दूसरे की खुशी बहुत कम लोग खुशी से देख सकते हैं, वरना ज्यादातर तो जला ही करते हैं। मेरे लिए डरने और परेशान होने की जरूरत नहीं है।"

नियत तिथि को शादी हो गई।

आधी रात गये लड़का उठा और यह सोचकर कि पत्नी गहरी

नींद में सो रही होगी, उसने मारने के लिए जूता उठाया ही था कि उसने आँखें खोल दीं।

"ऐसा मत कीजिए," उसने कहा, "पहली रात को लड़ाई लड़ना बुरा समझा जाता है। कल आपका अगर जी चाहे, तो मार लीजिएगा।"

दूसरी रात को फिर उसने मारने के लिए जूता उठाया, लेकिन पत्नी ने उसे फिर रोका—"अगर पति-पत्नी अपनी शादी के पहले सप्ताह में लड़ते हैं, तो बड़ा अशगुन होता है। मैं आपको बहुत अक़्ल-मंद आदमी समझती हूँ, इसलिए आप मेरी बात मानिए। आठवें दिन फिर आपका जितना जी चाहे मार लीजिएगा।"

वह इस बात पर राज़ी हो गया और जूता एक तरफ़ फेंक दिया, लेकिन सातवें दिन शाम को ही बहू अपने मायके बिदा हो गई।

जब लड़के के दोस्तों ने यह सुना, तो उन्होंने उसकी खिल्ली उड़ाई, "वाह रे जोरू के ग़ुलाम! कैसे बेवक़ूफ़ हैं आप। हम तो पहले ही से समझते थे कि यही होगा।"

इधर उसकी माँ उसके भविष्य के मंसूबे गढ़ रही थी। उसने सोचा कि अब तो लड़के को अपना अलग घर बनाकर आज़ादी से रहना चाहिए। इसलिए पति से बोली, "इसे कुछ सामान दे दो और व्यापार करने के लिए सफ़र पर भेज दो।"

"कभी नहीं", व्यापारी ने कहा, "इसे कुछ भी देना रुपया पानी में बहाना होगा। यह सब बरबाद कर देगा।"

"तो एक बार बर्बाद करके कुछ अक्ल तो सीख लेगा," पत्नी ने उत्तर दिया, "इसे कुछ धन दे दो और परदेश भेज दो। अगर यह

कुछ कमा लाय, तो समझ लेंगे कि यह उसकी कुछ क़ीमत भी समझेगा। लेकिन अगर खो बैठेगा और भिखारी बन बैठेगा, तब भी कुछ सबक़ सीख लेगा और फिर पाने पर उसे सँभालकर रक्खेगा। हर तरह से कुछ न कुछ फ़ायदे की बात ही सीखेगा और अगर इनमें से एक भी अनुभव अच्छा या बुरा इसे नहीं हुआ तो फिर यह ज़िन्दगी भर ऐसा ही बेवक़ूफ़ बना रहेगा।"

ख़ैर, किसी तरह व्यापारी सहमत हो गया और लड़के को बुलाकर उसे कुछ रुपया, सामान और नौकर दिये और सावधानी से रहने के लिए सतर्क करके बिदा कर दिया। युवक बहुत से नौकरों को लेकर यात्रा करने चला। थोड़ी दूर चलकर ही वह एक बड़े उपवन के समीप पहुँचा जिसके चारों ओर एक ऊँची दीवार थी। उसे देखकर नवयुवक व्यापारी ने अपने नौकरों से पूछा—"यह क्या है? जाकर अन्दर देखो।"

नौकर अन्दर गये और लौटकर उन्होंने अपने स्वामी को यह सूचना दी—"बाग़ के बीच में एक बड़ा विशाल भवन है।"

यह सुनकर वह स्वयं अन्दर गया और उसने भवन में एक सुन्दरी युवती देखी। सुन्दरी ने उसे संकेत से अपने पास बुलाया और शतरंज खेलने के लिए आमंत्रित किया।

यह स्त्री पक्की जुआरिन थी। जीतने की सभी चालाकियाँ जानती थी। उसकी एक ख़ास चालाकी यह थी कि वह रात को ही दीपक पास रखकर खेलने बैठती थी और एक बिल्ली को पास बिठा लेती थी। जभी हारनेवाली होती, तभी उस बिल्ली को इशारा कर देती और वह दीपक पर उछलकर उसे बुझा देती और वहाँ अँधेरा हो

आता। अँधेरे में वह अपने बिपक्षी के मोहरे बदल देती। इस तरह वह हमेशा जीतती ही थी। आज तक उसे कोई हरा नहीं सका था और इसी लिए उसने अतुल सम्पत्ति एकत्र कर ली थी।

इस नवयुवक व्यापारी के साथ भी उसने वही बिल्लीवाली चाल चलकर उसकी समस्त सम्पत्ति---धन---माल---नौकर और स्वयं उसे भी जीत लिया। फिर उसने उसके साथ अत्यन्त दुर्व्यवहार किया। उसे बंदी करा दिया। बंदीगृह में उसे बड़ी-बड़ी यातनायें सहनी पड़ीं। यहाँ तक कि वह प्रतिपल ईश्वर से यही प्रार्थना करता रहता कि मुझे शीघ्र ही इस दुखद संसार से बुला लो।

एक दिन बन्दीगृह के तोरण के सम्मुख उसने एक आदमी को जाते देखा। उसने तुरन्त ही उसे पुकारा और उससे पूछा---"आप कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं?"

उस मनुष्य ने उत्तर दिया कि मैं अमुक देश से आ रहा हूँ और अब वहीं लौटकर जा रहा हूँ। उसकी इस बात से नवयुवक व्यापारी को यह ज्ञात हो गया कि वह मेरे ही शहर का आदमी है, इसलिए उसने कहा---"मुझे यह जानकर बहुत हर्ष हुआ। मैं भी आपके ही नगर का रहनेवाला हूँ और यहाँ ऐसी विपत्ति में आ फँसा हूँ। आप कृपया जो दो पत्र मैं आपको दूँ, वे मेरे पिता और पत्नी को दे दीजिएगा। यदि आप मेरे ऊपर इतनी कृपा कर देंगे, तो जन्म भर मैं आपका कृतज्ञ रहूँगा।"

परदेशी सहमत हो गया और उसके दोनों पत्र लेकर चला गया। उसे जो थोड़ा-बहुत अपना व्यापार-सम्बन्धी काम वहाँ करना था, उसे समाप्त करके वह अपने देश लौट गया और बंदी नवयुवक व्यापारी

के दोनों पत्र यथास्थान पहुँचा दिये, किन्तु वह अशिक्षित था, इस-लिए पत्नीवाला पत्र उसने नवयुवक के पिता को दे दिया और पिता-वाला पत्र उसकी पत्नी को।

पत्र पढ़कर जो समाचार पिता को ज्ञात हुआ, उससे उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। परन्तु उनकी समझ में यह नहीं आया कि यह पत्र उसने मुझे न लिखकर अपनी बहू को क्यों लिखा है और यह क्यों लिखा है उसे कि मैं तुझे जेल से छूटते ही जूतों से खूब पीटूँगा।

उधर जब उसकी पत्नी ने वह पत्र पढ़ा, तो अपने पति की विपत्ति जानकर उसे अत्यन्त दुख हुआ, किन्तु उसकी समझ में यह नहीं आया कि उन्होंने यह पत्र अपने पिता के नाम लिखकर मेरे पास क्यों भेज दिया। इसी उलझन में वह अपने ससुर के पास पहुँची और सब हाल कहा। अब पिता और पत्नी को ऐसी परिस्थिति में कितना आश्चर्य हुआ होगा, वह समझा जा सकता है। यह रहस्य था।

कुछ समय तक अपने ससुर से परामर्श करने के पश्चात् पुत्र-वधू ने—जो बुद्धिमती और चतुर थी—अपने पति से मिलने जाने का संकल्प किया और संभव हुआ तो उन्हें बंधन से मुक्त करने को भी। वृद्ध व्यापारी ने भी अपनी स्वीकृति दे दी और उसे मार्ग-व्यय भी दे दिया।

भेष बदलकर वह वीर स्त्री चल दी और उसी जुआरिन सुन्दरी के पास पहुँची। उसने जुआरिन को यह सूचना दी कि मैं एक धनवान् व्यापारी का पुत्र हूँ और शतरंज का खिलाड़ी भी। मैं तुम्हारे साथ भी अपने भाग्य की परीक्षा करना चाहता हूँ। सुन्दरी तुरन्त ही सहमत हो गई। खेल रात में होनेवाला था। इसलिए इसी बीच में धनवान्

व्यापारी के पुत्र ने जुआरिन की नौकरानियों से पूछा कि आख़िर वह क्या युक्ति है जिससे तुम्हारी मालकिन हमेशा जीतती है, और कभी नहीं हारतीं।

पहले तो नौकरानियों ने कहा हमें नहीं मालूम, लेकिन फिर जब उसने उन्हें अशर्फ़ियाँ देने का लालच दिया, तब उन्होंने सब बातें बता दीं, और यह भी कह दिया कि शायद आज फिर तुम्हारे साथ भी वह यही बिल्लीवाली तरकीब करेगी। यह सब सूचना प्राप्त कर व्यापारी का पुत्र अपने कमरे में लौट आया।

रात को जब खेल का नियत समय आ पहुँचा, तब जुआरिन ने व्यापारी के पुत्र को अपना अभिवादन भेजकर बुलाया। व्यापारी के पुत्र ने अपनी गोद में एक चूहा छिपाकर रख लिया और खेलने चल दिया।

खेल शुरू हुआ। व्यापारी का पुत्र शतरंज खेलने में बहुत कुशल और चतुर था और शीघ्र ही उसकी जीत की संभावना दिखाई देने लगी। यह देखकर जुआरिन ने अपनी बिल्ली को दीपक बुझाने का इशारा किया, लेकिन ज्यों ही बिल्ली दीपक की ओर दौड़ी कि व्यापारी के पुत्र ने चूहा छोड़ दिया और बिल्ली लौटकर फ़ौरन उस पर टूट पड़ी और उसे पकड़ने के लिए कमरे भर में इधर से उधर दौड़ने लगी।

"अब तो मात हो गया," व्यापारी के पुत्र ने कहा। अब तो जुआरिन के पास धोखा देने की और कोई चाल थी ही नहीं, इसलिए आख़िर वह हार गई। इसके बाद दूसरी बाजी हुई, तीसरी हुई, चौथी हुई और होती चली गई। हर बाजी में जुआरिन ने मात खाया और

धीरे-धीरे व्यापारी का पुत्र उसकी समस्त सम्पत्ति, मकान और स्वयं उसे भी जीत गया।

जीतते ही उसने जुआरिन की सब सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर लिया और सब माल-जेवर बड़े-बड़े संदूकों में ताले में बंद कर रख दिया। तत्पश्चात् वह उसके बंदीगृह में गया और उसके धोखे के शिकार सभी लोगों को मुक्त कर दिया। इस प्रकार सबके साथ उसका पति भी मुक्त हो गया, किन्तु उसने व्यापारी के पुत्र के भेष में अपनी पत्नी को पहचाना नहीं, किन्तु उसने विशेष रूप से अपने पति से ही मित्रता जोड़ी और उसके फटे चिथड़े और गंदे कपड़े बदलकर उसे बढ़िया पोशाक पहनाई और उसके घर भेजने का प्रबंध किया और घर तक पहुँचाने के बहाने वह भी उसके साथ-साथ चला। जब वे अपने नगर के समीप पहुँचे, तब व्यापारी के पुत्र ने अपने पति से कहा, "मुझे अपने एक और मित्र से कुछ आवश्यक कार्य है, इसलिए मैं जा रहा हूँ, लेकिन तुम मेरी चिन्ता मत करना। यह सब सन्दूकों की कुंजियाँ लो और इन्हें अपने घर में होशियारी से रक्खे रहना जब तक मै लौटकर न आऊँ। और अगर मै बीस दिन तक न लौटूं, तो यह सब सामान तुम अपना समझना। हां, और इस जुआरिन को भी अपने साथ बड़ी निगरानी में रखना।

यह कहकर व्यापारी का पुत्र अपने घर एक दूसरे चक्करदार रास्ते से पहुँच गया और भेष उतार वह फिर वधू बन गई।

नवयुवक व्यापारी नौकरों तथा जुआरिन के साथ अपने घर पहुँचा और उसकी मा अपने बेटे को घर लौटा देखकर फूली नहीं समाई।

कई दिन बाद उसकी पत्नी अपनी ससुराल आई। उसे देखते ही

उसके पति ने क्रोधित होकर कहा—"तू जानती है तुझे कितने जूते खाने हैं मुझसे ?" और यह कहकर उसने अपने पैर से एक जूता निकाला।

"हाय ! हाय !" उसके माता-पिता चीख पड़े, "क्या घर लौट-कर आने की खुशी ऐसे नीच कर्म से मनाओगे ?"

और फिर उसकी पत्नी ने भी अकेले में उससे कहा, "अब मैं समझी। मैंने समझा था कि इतने दिनों में तुमने कुछ सीख लिया होगा, लेकिन तुमने अभी तक खाली भाड़ ही झोंका है और पहले जैसे ही मूर्ख और बदमाश हो। वह सन्दूक़ उठाकर मेरे पास लाओ, जिसमें तुम्हारे जेल के गंदे और फटे चिथड़े कपड़े है।

पत्नी ने उस दिन सब संदूक़ों की कुंजी तो पति को दे दी थी, पर इस चिथड़ेवाले संदूक़ की कुंजी अपने पास ही रख ली थी। जब वह चिथड़ोंवाला बक्स उठाकर ले आया, तब उसने उसका ताला अपनी कुंजी से खोला और उसमें से वे चिथड़े निकालकर पतिदेवता से पूछा, "कहिए, जनाब यह कपड़े आप ही पहनते थे न ?" उन्हें देखकर अब ज़रा जेल की याद कीजिए जहाँ आप पर कड़ी मार पड़ती थी कोड़ों की—खाने को जानवरों का खाना मिलता था—और ऊपर से बुरी से बुरी गालियाँ खाते थे ! भूल गये क्या वह दिन ? अच्छा, अब आप काँप रहे हैं ! हाँ, अब क्यों नहीं काँपोगे ! मैं ही वह धनवान् व्यापारी का पुत्र हूँ जिसने जनाब को जेल से छुड़ाया है ! तुम्हारी मुसीबत की खबर पाते ही मैं यहाँ से भेष बदलकर एकदम चल दी थी और तुम्हें फंसानेवाली सुन्दरी जुआरिन के पास पहुँची और उसकी जीत की चाल पकड़कर मैंने उसे हरा दिया और उसकी सारी संपत्ति और स्वयं उसे

भी जीत लिया। विश्वास न हो, तो वह जुआरिन यहीं तो मौजूद है, उससे पूछ लो कि वह मुझे पहचानती है कि नहीं।

मूर्ख पति ने अविश्वास किया और जाकर जुआरिन से पूछा।

उसने उत्तर दिया, हाँ, यही बात है। आपकी पत्नी सब सच कह रही है!

यह सुनकर वह चुप रह गया। फिर उसके मुँह से बोल नहीं निकला।

उसकी मा नें अपनी सुयोग्य और चतुर पुत्र-वधू को अपनी छाती से चिपटा लिया और अचल सौभाग्य का आशीर्वाद दिया।

किन्तु पिता को अपने पुत्र के इन कारनामों पर इतना क्रोध चढ़ा हुआ था कि वे कुछ नहीं बोल सके।

परन्तु, जब उनका आवेश कुछ कम हुआ तब उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—"अब तो तुम्हें विश्वास हुआ कि आपके बेटे शरीफ अव्वल दर्जे के बेवक़ूफ हैं। यह सब माल और जेवर बहू के ही पास रहेगा और उसी का होगा। ऐसी सुशील लड़की भला कहीं इस गधे के गले में बँधनी चाहिए थी!"

इन्दीवर

—तिब्बत

तक्षशिला में एक सम्पन्न गृहस्थ की पत्नी ने एक अतीव सुन्दर कन्या को जन्म दिया। उस कन्या के नेत्र नीले कमल के समान खिले हुए थे, उसके शरीर से कमल की-सी सुगंध निकलती थी और कमल के पराग जैसा उसका वर्ण था, इस कारण उसकी माता ने उसका नाम इन्दीवर रक्खा।

इन्दीवर के न कोई भाई था और न कोई बहन ही, इसलिए उसके पिता ने यह सकल्प किया कि मैं इन्दीवर का विवाह ऐसे युवक के साथ करूँगा, जो घर-जमाई बनकर मेरे पास ही रहे।

तक्षशिला में एक अन्य गृहस्थ था, जो अपने एक-मात्र पुत्र को छोड़कर मर गया था। यह अनाथ लड़का इन्दीवर के पिता की दृष्टि में समा गया और उन्होंने उसे अपने घर रख लिया और उससे कहा कि तुम्हें इन्दीवर से विवाह करके यहीं मेरे घर रहना पड़ेगा और सम्पत्ति की देख-भाल करनी होगी। वह सहमत हो गया।

इन्दीवर के यौवन में पदार्पण करते ही पिता ने उसी युवक के साथ उसका विवाह सम्पन्न कर दिया, जिसका उन्होंने अपने घर पर रखकर पालन-पोषण किया था। किन्तु विवाह करने के उपरान्त ही उनकी मृत्यु हो गई और इस प्रकार इन्दीवर की माता विधवा हो गई। सुख और ऐश्वर्य के साधनों की कोई न्यूनता न होने के कारण इस विधवा